मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 18 ● वर्ष 2 ● अंक 11 ● जनवरी 2013 ● पाँच रुपये ● सोलह पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

किस बात की ख़ुशी मनायें मेहनतकश इस नये वर्ष में?

एक और वर्ष बीत गया...और साबित कर गया कि

पूँजीवाद का एक-एक दिन भारी है हमारे वजूद पर

● सम्पादकीय अग्रलेख

वर्ष 2012 बीत चुका है। इस बीते वर्ष दुनिया ने बहुत-कुछ देखा। इस वर्ष ने पूँजीवाद-विरोधी तमाम संघर्षों को देखा; यह दुनिया के पैमाने पर पूँजीवादी विश्व व्यवस्था के संकट के और ज़्यादा गहराने का साक्षी बना; इसने समूचे पूँजीवादी विश्व की बर्बरतम प्रतीक घटनाओं को देखा; इसने उसके ख़िलाफ़ जनता के प्रतिरोध को भी देखा; मज़दूर वर्ग के कई जुझारू आन्दोलनों को भी देखा इस वर्ष ने और साथ ही दुनिया के तमाम हिस्सों में नवउदारवादी नीतियों के ख़िलाफ़ जनता के प्रतिरोध को भी देखा। इस वर्ष ने बहुत-सी बातों का फ़ैसला किया; इसने मज़दूर वर्ग और क्रान्तिकारी शक्तियों को बहुत-कुछ सिखलाया। कह सकते हैं कि देश और दुनिया के पैमाने पर यह वर्ष एक शिक्षक वर्ष था।

2011 में भ्रष्टाचार-विरोधी आन्दोलन की जो नौटंकी शुरू हुई थी, वह 2012 में नये काण्डों से होकर गुज़री! अण्णा हज़ारे और अरविन्द केजरीवाल ने मिलकर जिस महातमाशे को शुरू किया था, उसमें दो-फाड़ हो गया। अरविन्द केजरीवाल 'आम आदमी पार्टी' बनाकर संसद-विधानसभा रूपी सुअरबाड़े की गन्द में लोट लगाने की पूरी तैयारी कर चुके हैं, तो दूसरी ओर अण्णा हज़ारे ने भ्रष्टाचार के विरोध में दूसरा जनान्दोलन शुरू करने का एलान किया है! वास्तव में, यहाँ भारत के पूँजीपति वर्ग ने बहुत ही शातिराना चाल चली है। अरविन्द केजरीवाल की आम आदमी पार्टी का काम है उच्च मध्यवर्गीय छात्रों-नौजवानों और नागरिकों के उस हिस्से को बेवक़ूफ़ बनाना जो कि पूँजीवादी चुनावी राजनीति में किसी नये विकल्प के निर्माण के भ्रम में पड़ा हुआ है, जबकि अण्णा हज़ारे को तुरुप के पत्ते के तौर पर बचा कर रखा गया है। क्योंकि पूँजीपति वर्ग के दूरदर्शी चिन्तक इस बात को समझ रहे हैं कि चुनावी राजनीति में उतरने के बाद जल्द ही श्रीमान सुथरा यानी अरविन्द केजरीवाल की लंगोट की भी गारण्टी नहीं ली जा सकती है! एक बार अगर कोई संसद-विधानसभा के घटिया खेल में उतरता है तो उसके सामने पूँजीपतियों के हाथों बिकने और फिर नीचता और गलाज़त के रसातल में उतरने के अलावा और कोई रास्ता नहीं होगा। इन पूँजीवादी चुनावों का ढाँचा ही ऐसा होता है जिसमें कोई धनबल और बाहुबल के बूते ही जीत सकता है। यानी, जिसकी लाठी उसकी भैंस! जिसके पास पैसे की ताक़त होती है, वही इस पूरे खेल पर राज करता है। और पैसा किसके पास है? पूँजीपति वर्ग के पास! टाटा और बजाज जैसे पूँजीपतियों ने अभी से आम आदमी पार्टी को समर्थन देने की बात कह दी है। ये पूँजीवादी औद्योगिक घराने सभी चुनावी पार्टियों को फ़ण्ड देते हैं, ताकि सरकार चाहे पूँजीपति वर्ग की किसी भी पार्टी की बने, लेकिन पूँजी के मुनाफ़े को बढ़ाने और ग़रीब-मेहनतकशों को निचोड़ डालने वाली नीतियाँ जारी रहें! पिछले चुनावों में भी अधिकांश बड़े औद्योगिक घरानों ने दोनों ही प्रमुख पूँजीवादी पार्टियों को करोड़ों का चन्दा दिया था। अब इसी खेल में एक तीसरा खिलाड़ी भी उतरने का मंसूबा पाले हुए है, और वह है श्रीमान सुथरा अरविन्द केजरीवाल! इन महोदय ने अपनी पार्टी के घोषणापत्र में मज़दूरों के बारे में सिर्फ़ एक जगह ज़ुबानी जमाख़र्च करते हुए कहा है ठेका प्रथा को समाप्त किया जाना चाहिए। लेकिन बाक़ी जगह श्रीमान सुथरा अपने पूँजीवादी दाताओं के बारे में टसुए बहाते नज़र आये! इन महाशय ने अपनी पार्टी के घोषणापत्र में कहा है कि बेचारे पूँजीपतियों को मजबूरी में भ्रष्टाचार करना पड़ता है! भला हो ऐसी मजबूरी का! इस अन्दाज़ में तो हर कोई मजबूर होना चाहेगा! भ्रष्टाचार के लिए तो बस नेता और नौकरशाह ज़िम्मेदार हैं! यानी कि केजरीवाल और उनकी वानर सेना की माँग सिर्फ़ यह है कि मज़दूरों और मेहनतकशों

(पेज 12 पर जारी)

बढ़ते स्त्री-विरोधी अपराधों के लिए ज़िम्मेदार वर्गों, व्यवस्था और समाज की सही पहचान करो!

पूँजीवादी-पितृसत्तात्मक बर्बरता को नेस्तनाबूद कर देने के सही रास्ते की पहचान करो!

16 दिसम्बर को दिल्ली में एक चलती बस में एक 23 वर्षीय पैरामेडिकल की छात्रा के साथ हुई सामूहिक बलात्कार की घटना ने सारे देश की अन्तरात्मा को झकझोर कर रख दिया। 13 दिनों तक मौत से लड़ने के बाद उस छात्रा ने सिंगापुर के एक अस्पताल में दम तोड़ दिया। इस घटना के ख़िलाफ़ दिल्ली ही नहीं पूरे देश में मज़दूर, औरतें, नौजवान, छात्र और बुद्धिजीवी सड़कों पर हैं। हर संवेदनशील व्यक्ति का दिल नफ़रत और बग़ावत की भावना से भरा हुआ है। दिल्ली सरकार और केन्द्र सरकार इस मुद्दे पर दिखावटी कवायदों में लग गयी हैं। बलात्कारियों पर सख़्त से सख़्त और जल्द से जल्द कार्रवाई की व्यवस्था करने की बजाय वे अपनी कोर बचाने में लगी हुई हैं और राष्ट्रीय राजधानी में इस घटना के विरुद्ध प्रदर्शन कर रही जनता का ही दमन कर रही हैं। इसमें कोई आश्चर्य की बात भी नहीं है। जिस संसद में 286 ऐसे सांसद हैं जिन पर स्त्री-विरोधी अपराधों के मुकदमे चल रहे हैं, उनसे और उम्मीद भी क्या की जा सकती है? कांग्रेस और भाजपा समेत तमाम चुनावी पार्टियों ने 26 बलात्कार के आरोपियों को पिछले चुनावों में टिकट दिये। ज़ाहिर है, बलात्कारियों, शोषकों-उत्पीड़कों और भ्रष्टाचारियों की संसद यही कर सकती थी!

इस घटना के बाद स्वत:स्फूर्त ढंग से जनता का गुस्सा फूट पड़ा। रोष और गुस्से से भरे आम लोग और स्त्रियाँ सड़कों पर उतर आयीं और यह लेख लिखे जाने तक लोग सड़कों पर मौजूद हैं। दिल्ली में हर दिन इस घटना के विरोध में प्रदर्शन हो रहे हैं। कुछ लोग फाँसी की माँग कर रहे हैं, तो कुछ बलात्कारियों को बधिया कर देने की; तो कुछ अन्य बामशक़्क़त उम्रक़ैद की माँग कर रहे हैं। लेकिन इन माँगों को उठाते समय हमें यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि बेहद कम बलात्कारी ही सज़ा की मंज़िल तक पहुँचते हैं। बलात्कार के कुल मामलों में से 74 फ़ीसदी मामलों में दोष-सिद्धि ही नहीं हो पाती। जिन मामलों में सज़ा मिलती भी है, उसमें पितृसत्तात्मक मानसिकता से ग्रसित न्यायालयें तय सज़ा से कहीं कम सज़ा देती हैं। इसका एक कारण यह भी होता है कि आम तौर पर इन मामलों में आरोपी समाज के धनी और प्रभावी वर्गों से आते हैं, और बलात्कृत स्त्री अक्सर ग़रीब या निम्न मध्यवर्गीय घरों से। ऐसे में न्यायालय अपने पुरुष सत्तावादी पूर्वाग्रह और वर्ग पूर्वाग्रहों के चलते कम सज़ा देते हैं, मुकदमों में दोष सिद्ध ही नहीं हो पाता।

(पेज 4 पर जारी)

मारुति सुज़ुकी मज़दूर आन्दोलन के समक्ष नयी चुनौतियाँ और उनसे निपटने का रास्ता 7
पेरिस कम्यून : पहले मज़दूर राज की सचित्र कथा (आठवीं किश्त) 8–10
संविधान – मूलभूत अधिकार: दावे और हक़ीक़त 11
नये साल पर मज़दूर साथियों के नाम 'बिगुल' का सन्देश 16

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

यूनियन ही हमारी ताकत है

पूँजीवादी समाज में मजदूर ना सिर्फ गुलामी और तबाही झेलता है, ना सिर्फ अपना खूना जला कर मालिक की तिजोरी भरता है बल्कि उसके वहसीपन का शिकार भी होना पड़ता है। उसके लिए गंदी गालियाँ सुनाना, अपमान झेलना और भीषण तरीके की पिटाई खाना ना सिर्फ आम बात है बल्कि काम का एक हिस्सा भी है।

इसका एक जीता, जागता उदाहरण हाल ही में करावल नगर के इलाके की शहीद भगतसिंह कालोनी में बादाम गोदाम की घटना हैं। यहाँ पर शराब के नशे में धूत एक बादाम मालिक ने एक मामूली सी बात पर एक मजदूर को ना सिर्फ बुरी तरह से पीटा बल्कि उसका सिर भी फोड़ दिया। जिस कारण मजदूर करीब एक महीने के लिए बिस्तर पर चला गया। इस घटना की रात जब करावल नगर मजदूर यूनियन को इस घटना की जानकारी मिली तो यूनियन ने अगले सुबह मजदूरों को एकजुट कर बादाम गोदाम पर घिराव कर पी.सी.आर वैन को खबर कर दी। कुछ देर बाद जब पुलिस घटना स्थल पर पहुँची तो पुलिस का रवैया मामला दर्ज करने के बजाय मालिक का पक्ष लेने का था लेकिन यूनियन और मजदूरों की एकजुटा देखकर पुलिस और मालिक को झुकना पड़ा और आखिकार मालिक ने मजदूरों से माफी माँगी, उसके ईलाज का पूरा खर्चा उठाया और मुआवजे के रूप में बीस हजार रुपये दिये। जाहिर तौर पर ये मजदूरों की फौरी और आंशिक जीत थी। लेकिन बादाम मजदूरों को ये बात समझ में आ गई कि मजदूर अगर मालिक के लिए दिन-रात एक करेगें भी काम कर दें तो मालिक की नजर में वो कूल्हे के बैल से ज्यादा काफी नहीं हैं वही दूसरी तरफ उसकी अपनी एकता सिर्फ एक है वो है उसकी यूनियन।

वैसे करावल नगर के बादाम गोदाम में काम करने वाले असंगठित मजदूरों के कमोबेश यही हालत है क्योंकि यहां ज्यादातर बादाम गोदाम फैक्टरी एक्ट के तहत पंजीकृत नहीं है इसलिए यहां श्रम कानून का कोई नामोनिशान तक नहीं। बादाम प्रोसेसिंग के मशीनीकरण हो जाने के बाद बहुत से मजदूर बेरोजगार हो गये। मालिक इस बात का फायदा उठा कर मजदूरों को भ्रमित करता है कि यूनियन और हड़ताल उनकी बेरोजगारी के लिए जिम्मेदार हैं। लेकिन जब इस तरह की घटना सामने आती है तो मजदूर ये बात साफ-साफ समझ जाते है कि उनकी बेरोजगारी का कारण उनकी हड़ताल नहीं बल्कि मालिक के मुनाफे की हवस है।

इस घटना से दो बात जाहिर है। एक असंगाठित मजदूरों का चौतरफा शोषण और दूसरा ये सबक की अगर मजदूर एकजुट हो जाऐ और अपनी एकता को व्यापक बना ले तो उनकी जीत पक्की है। यहाँ पर मजदूरों ने अपनी एकता के बल पर ही एक आंशिक जीत दर्ज की। बस जरूरत इस बात की है कि इस एकता को और टिकाऊ, व्यापक और ईलाकाई मजदूरों आधार पर खड़ा किया जाए।

- अमित,
करावल नगर मजदूर यूनियन

दिल्ली में रहना है तो एकजुट होकर लड़ना सीखो!

गांव में दिल्ली शहर के बारे में बहुत कुछ सुन-सुन रखा था। कि राजधानी दिल्ली में हर हाथ को काम मिलता है। कोई भी वहाँ बेरोजगार नहीं है। अरे ये तो कुछ भी नहीं मैनें तो यहाँ तक सुन रखा है कि अभी-अभी दिल्ली में शीला दीक्षित ने अकुशल मजदूरों को न्यूनतम वेतन 7040 रु. और कुशल मजदूरों को 8528 रु. महीने में देने को कहा है। ये भी कहा है कि मँहगाई बढ़ी है तो क्या हुआ। सबके वेतन भी बढ़ा दिया। इसलिए मैं भी अपना गांव छोड़कर दिल्ली आ गया। रोजगार कमाने के लिए। आकर दिल्ली की चमक-धमक देखी बड़ा अच्छा लगा। और फिर रहने के लिए औद्योगिक क्षेत्र बादली के पास राजा विहार बस्ती में एक छोटा-सा कमरा लिया जिसका किराया 1300 रु. और करीब 8रु. यूनिट के हिसाब से बिजली का बिल देना था। फिर मैंने बादली औद्योगिक क्षेत्र की लगभग सभी फैक्टरी में पूछा तो पता लगा कि किसी फैक्टरी में 3000रु. तो किसी में 3500रु. किसी में 4000रु. मिलते हैं। जिसमें बहुत भारी काम है, गर्म काम है, लोडिग- अनलोडिग है उसमें 4500रु. महीने की तनख्वा 8 घण्टे के हिसाब से है। खैर मैने भी मासू इन्टरनेश्नल एम-13 बादली में काम पकड़ा। इसमें वी.आई.पी. ऑटो पार्टस बनते हैं जो सीधा अमेरिका को सप्लाई होते है। यहाँ हम 3700रु. 8घण्टे महीने के हिसाब से लगे। इस कम्पनी में दिनभर आटो-पार्टस की ट्राली में रखकर इधर से उधर धक्का मारने का काम है। 8 घण्टे में ही कमर की हालत नाजुक हो जाती थी। अब आप खुद अंदाजा लगाइए। लोहे के आधा किलो के कम से कम से 2 से 3 हजार टुकड़े ट्राली में रखकर धक्का मारकर पहले खराद मशीन पर ले जाओ फिर वहाँ से ड्रिल मशीन पर ले जाओ, वहाँ से थ्रेडिग मशीन पर, वहाँ से हाइड्रोलिक मशीन पर, वहाँ से पैकिंग पर - दिनभर यही काम। इधर से उधर, पूरे दिन में एक चाय तक नहीं। बैल को भी दो-तीन घण्टे में छोड़ देते है। हमको आठ घण्टे से पहले आने की इजाजत नहीं। उसके बाद भी ओवरटाइम लगाने पर प्रेशर, हम तो मना कर दिए। अब आपको बताते हैं इस विकसित दिल्ली में मजदूरों का क्या हाल है। यहाँ पर मजदूर महीने से अधिक से अधिक परिश्रम करने पर भी सिर्फ मकान का किराया और दो वक्त की रोटी की ही जुगाड़ कर पाते हैं। और जिनको मजबूरी में अपनी पत्नी व बच्चों को साथ रखना पड़ता है। वो तो आपको 24 घण्टे फैक्टरी में ही नजर आऐंगे। ऐसे हाल में हफ्तों गुजर जाते है। बच्चे अपने बाप के दर्शन तक नहीं कर पाते है। क्योंकि पिताजी सुबह जल्दी चले जाते है। शाम को देर से सिर्फ खाना खाने आते हैं तब बच्चा सोया मिलता है। खैर मेरे साथ भी बड़ी बुरी घटना हुई। अभी दिल्ली आये हुए दो महीना भी नहीं हुए थे। हाड़तोड़ काम करने पर अचानक मुझे कमजोरी ने घेर लिया और शरीर थका सा रहने लगा। इसी वहज से मैं भी काम पर न जा सका। और दवाई करने लगा तो पता चला, मच्छरों के काटने से मलेरिया हो गया है। रोज डाक्टर सुई लगा दे और तीन खुराक दवाई के दे दे। जिसके 80 रु. ले ले। तीन-चार दिन तक यही चलता रहा और शरीर में कोई सुधार नहीं हुआ। जो रुपये बचाकर रखे थे वो भी खर्च हो गए। मेरे पास कुछ न बचा। फैक्टरी में मेरा करीब 400 रु. बचा हुआ था। हिसाब करवाकर मैंने घर का रास्ता देखा। मैंने तय कर लिया, स्वस्थ होकर अब दिल्ली आउंगा तो अकेले-अकेले, चुपचाप सहूंगा नहीं। साथी मज़दूरों के साथ एकता बनाउंगा और लड़ूंगा। वरना भागते-भागते ही ज़िन्दगी बीत जायेगी।

- आपका साथी।

एक बेहद प्रासंगिक और विचारोत्तेजक पुस्तिका

भ्रष्टाचार और उसके समाधान का सवाल

सोचने के लिए कुछ मुद्दे

आह्वान पुस्तिका–6

मूल्यः 25 रुपये

मज़दूर साथियो, 'आपस की बात' आपका पन्ना है। इसमें छापने के लिए अपने कारख़ाने, काम, बस्ती की समस्याओं व स्थितियों के बारे में, अपनी सोच के बारे में लिखकर हमें भेजिये। आपको 'बिगुल' कैसा लगता है, इसमें क्या अच्छा लगता है और क्या कमियाँ नज़र आती हैं, इसे और बेहतर कैसे बनाया जा सकता है – इन बातों पर भी आपकी राय जानने से हमें मदद मिलेगी। आप नीचे दिये पते पर हमें पत्र लिख सकते हैं या बिगुल कार्यकर्ता साथी को ज़ुबानी भी बता सकते हैं।– सम्पादक मण्डल

मज़दूर बिगुल की नयी वेबसाइट
आप यहाँ देख सकते हैं:
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की महत्वपूर्ण सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। हम बिगुल के प्रवेशांक से लेकर अब तक के सभी अंक वेबसाइट पर उपलब्ध कराने के लिए काम कर रहे हैं।

आप इस वेबसाइट पर जाकर भी बिगुल की सामग्री पर अपने विचार व्यक्त कर सकते हैं या कोई रिपोर्ट आदि हमें भेज सकते हैं।

मज़दूर बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाज़ों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

मज़दूर बिगुल 'जनचेतना' की सभी शाखाओं पर उपलब्ध है :

- डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020 फोन : 0522-2786782
- जनचेतना स्टाल, काफ़ी हाउस बिल्डिंग, हज़रतगंज, लखनऊ (शाम 5 से 8 बजे)
- 114, जनता मार्केट, रेलवे स्टेशन रोड, गोरखपुर-273001
- जनचेतना, दिल्ली – फ़ोन : 09910462009
- जनचेतना, लुधियाना – फोन : 09815587807

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।"
– लेनिन

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता। बिगुल के लिए सहयोग भेजिये/जुटाइये। सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिये।

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन : 0522-2335237

दिल्ली सम्पर्क : बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-94, फ़ोनः 011-64623928

ईमेल : bigul@rediffmail.com

मूल्य : एक प्रति – रु. 5/- वार्षिक – रु. 70/- (डाक खर्च सहित)

चोटपुर (नोएडा) में स्त्री मज़दूर के साथ सामूहिक बलात्कार और हत्या के बाद अपराधियों को बचाने और पीड़िता को ही कलंकित करने में जुटी है पुलिस

इज़्ज़त और इंसाफ़ के लिए मज़दूर वर्ग को संगठित होकर लड़ना होगा!

16 दिसम्बर को दिल्ली में घटी बर्बर गैंगरेप की घटना के बाद भड़का जनाक्रोश अभी शान्त भी नहीं हुआ था कि दिल्ली से सटे नोएडा में गत 4 जनवरी को एक मज़दूर लड़की के साथ वही बर्बरता दोहरायी गयी। दिल्ली गैंगरेप काण्ड के बाद कहाँ तो पुलिस और प्रशासन से स्त्री विरोधी अपराधों में मुस्तैदी दिखाने की उम्मीद की जानी चाहिए थी लेकिन चोटपुर की घटना में पीड़िता को न्याय दिलाना तो दूर की बात है उल्टा पुलिस अपराधियों को बचाने और पीड़िता को ही कलंकित करने में जुटी हुई है।

नोएडा के चोटपुर इलाक़े की रहने वाली एक मज़दूर लड़की 4 जनवरी की रात 9 बजे सेक्टर 65 स्थित अपनी कम्पनी से कार्ड पंच करवाकर ड्यूटी से छूटी। लेकिन वो अपने घर नहीं पहुँच पायी। दरिन्दों ने उसके घर के पास से ही उसको अगवा करके उसके साथ बलात्कार किया और गला घोंटकर उसकी हत्या कर दी। 5 जनवरी की सुबह चोटपुर मोड़ के पास सड़क किनारे एक खाली प्लाट में उसका अस्त-व्यस्त शव मिला। उधर अपनी लड़की की चिन्ता में परिवार वाले देर रात तक जगह-जगह भटकते रहे। थक-हारकर जब चौकी पहुँचे तो पुलिस वालों ने यह कहकर उन्हें भगा दिया कि 'लड़की अपने यार के साथ घूम रही होगी!' सुबह पुलिस-प्रशासन के लोगों ने लड़की के शव को अपने कब्ज़े में ले लिया और परिवार वालों को सूचना दिये बिना उसका अन्तिम संस्कार करने का इन्तज़ाम तक कर डाला। इतने दिन गुज़र जाने के बावजूद पुलिस ने अभी तक आरोपियों के ख़िलाफ़ कोई कार्रवाई नहीं की है और इससे भी उसकी भूमिका पर सन्देह होना लाज़िमी है।

चोटपुर की इस घटना ने पूँजीवादी राज्यसत्ता के तीनों खम्भों–विधायिका, न्यायपालिका और कार्यपालिका–की असलियत उजागर कर दी है। जहाँ इस पूरे मामले में पुलिस में की कार्यशैली सन्देह के घेरे में है वहीं विधायिका और न्यायपालिका की चुप्पी भी ग़ौरतलब है। पूँजीवादी व्यवस्था का चौथा खम्भा, यानी मीडिया, भी मज़दूर वर्ग की स्त्री के साथ हुए इस अत्याचार के पीछे की सच्चाई को सामने लाने में कोई दिलचस्पी नहीं दिखा रहा है। चोटपुर की घटना ने एक बार फिर साबित कर दिया है कि मज़दूर वर्ग पूँजीवादी राज्यसत्ता के किसी भी खम्भे से किसी मदद की उम्मीद नहीं कर सकता।

सात किमी लम्बी सत्याग्रह यात्रा और विरोध प्रदर्शन

16 दिसम्बर को दिल्ली में घटी घटना के बाद भी नोएडा पुलिस की कार्यशैली में कोई बदलाव न देखकर पीड़ित युवती के घरवालों-परिजनों और इन्साफ़पसन्द नागरिकों, छात्रों-छात्राओं और मज़दूरों ने बिगुल मज़दूर दस्ता और स्त्री मुक्ति लीग के आह्वान पर घटनास्थल से एसडीएम कार्यालय तक 7 किमी लम्बी सत्याग्रह यात्रा निकाली और विरोध प्रदर्शन किया। सत्याग्रह यात्रा के बाद एसडीएम को ज्ञापन सौंपते हुए पीड़िता की माँ ने एसडीएम को बताया कि उन्हें स्थानीय पुलिस पर ज़रा भी भरोसा नहीं रह गया है क्योंकि वह स्थानीय धनी और प्रभावशाली लोगों के प्रभाव में मामले को कमज़ोर करने का प्रयास कर रही है।

यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि पीड़िता के घरवालों को सूचित किए बिना और पोस्ट मार्टम कराये बिना ही नोएडा पुलिस उसका अन्तिम संस्कार करा देने की योजना बना रही थी। स्थानीय लोगों और पीड़िता के घरवालों के दबाव डालने पर ही पुलिस ने पोस्टमार्टम करवाया। लेकिन पोस्टमार्टम की रिपोर्ट अभी तक पीड़िता के घरवालों को नहीं सौंपी गयी है।

स्त्री विरोधी अपराध और मज़दूर वर्ग

16 दिसम्बर की घटना के बाद से लोग सड़कों पर हैं लेकिन स्त्री विरोधी अपराधों में कोई कमी होती नज़र नहीं आ रही है। सन् 2011 में देश भर के थानों में स्त्रियों के ख़िलाफ़ होने वाले अपराधों की कुल संख्या 2,28,650 (2 लाख अट्ठाइस हज़ार छः सौ पचास) थी। सभी जानते हैं कि स्त्री विरोधी अपराधों के बहुत कम ही मामले सामने आ पाते हैं और उनमें से कुछ ही मामले अदालत तक पहुँचते हैं। पुलिस के रवैये के कारण ज़्यादातर मामले यूँ ही दबा दिये जाते हैं।

वैसे तो घर से लेकर सड़क तक स्त्री कहीं भी सुरक्षित नहीं है लेकिन मज़दूर स्त्रियों और मज़दूरों की स्त्रियों के मामले में यह सच्चाई और भी क्रूर और भयंकर रूप अख़्तियार कर लेती है। गली-मुहल्ले से लेकर फ़ैक्ट्री तक एक मज़दूर स्त्री को जिन अपमानजनक स्थितियों का सामना करना पड़ता है मध्यवर्गीय स्त्रियाँ उसकी कल्पना तक नहीं कर सकतीं। फ़ैक्ट्री मालिक, सुपरवाइज़र, ठेकेदार और उनके गुर्गे और यहाँ तक कि साथ में काम करने वाले कुछ पुरुष मज़दूर भी नज़रों, कटाक्षों और व्यवहार से स्त्री मज़दूर को लगातार अपमानित करते रहते हैं। सभी जानते हैं कि एक ग़रीब घर की मज़दूर स्त्री समाज की सबसे अरक्षित प्राणी है और एक पितृसत्तात्मक समाज और शासन-व्यवस्था में उसके साथ कैसा भी सलूक़ किया जा सकता है। हमारे देश में जहाँ मध्यवर्गीय स्त्रियों तक को रोज़-ब-रोज़ अपमान और शर्मिन्दगी झेलनी पड़ती है, वहाँ मजदूर स्त्रियों की चर्चा ही क्या की जाये।

आज जबकि स्त्रियाँ बड़े पैमाने पर घरों से निकलकर फ़ैक्ट्रियों-कारख़ानों में काम करने जा रही हैं, उनकी ख़ास समस्याओं पर अलग से ध्यान देना बेहद ज़रूरी हो गया है। सर्वहारा वर्ग का कोई भी संघर्ष स्त्रियों की भागीदारी के बिना सफल नहीं हो सकता। आज यह ज़रूरी हो गया है कि मजदूर वर्ग सिर्फ वेतन-भत्ते की लड़ाई ही न लड़ता रहे बल्कि सभी स्त्रियों के साथ-साथ मज़दूर स्त्रियों की सुरक्षा, सुरक्षित सार्वजनिक परिवहन, कड़े क़ानून, फ़ैक्टरी क़ानूनों का कड़ाई से पालन करवाने जैसे तात्कालिक सुधारों के लिए भी बुर्जुआ राज्यसत्ता पर दबाव डाले। मज़दूर वर्ग को यह माँग उठानी चाहिए कि न्यूनतम वेतन बढ़ाये जायें और ओवरटाइम का भुगतान दुगुने रेट से हो ताकि मज़दूरों को और ख़ासकर महिला मज़दूरों को पूरा महीना बिना छुट्टी सुबह से लेकर देर रात तक काम करने के लिए मजबूर न होना पड़े। यह सही है कि बेहद ग़रीबी के कारण ही मज़दूर स्त्रियों को (और पूरे मज़दूर वर्ग को ही) अपमानजनक और जोखिमभरी परिस्थितियों में काम करने के लिए मजबूर होना पड़ता है। लेकिन हमें यह बात हमेशा याद रखनी होगी कि अगर हम सिर्फ़ इतने के लिये ही लड़े तो हमें कुछ भी नहीं मिलेगा। यह व्यवस्था मुट्ठीभर लोगों के मुनाफ़े की ख़ातिर पूरे देश के मेहनतकशों, स्त्रियों, बच्चों, दलितों और आदिवासियों के मांस को भी मण्डियों में बेच देने को तैयार है। इस लुटेरी और दमनकारी व्यवस्था को मटियामेट किये बिना स्त्रियों के सम्मान और सुरक्षा की गारण्टी नहीं की जा सकती। लेकिन इसके लिए हमें क्रान्तिकारी संगठन बनाकर रोज़-रोज़ इंसाफ़ और हक़ की लड़ाई लड़ने के साथ ही पूरे समाज को बदल डालने के लिए भी लड़ना पड़ेगा, वरना ये तात्कालिक गुस्सा निकल जाने के बाद सब शान्त हो जायेंगे और कुछ भी नहीं बदलेगा।

– बिगुल संवाददाता

"अपनी बहादुर बहन की शहादत को बेकार नहीं जाने देंगे, संघर्ष के इस सिलसिले को अब रुकने नहीं देंगे!"

दिल्ली में 16 दिसम्बर की बर्बर घटना के ख़िलाफ़ स्त्री मज़दूर संगठन, स्त्री मुक्ति लीग, बिगुल मज़दूर दस्ता, दिशा छात्र संगठन, नौजवान भारत सभा और जागरूक नागरिक मंच के कार्यकर्ता विभिन्न शहरों में सड़कों पर उतरे।

दिल्ली के करावलनगर और मुस्तफ़ाबाद इलाके में बिगुल मज़दूर दस्ता और नौजवान भारत सभा की ओर से इस मुद्दे पर व्यापक पर्चा वितरण किया गया और स्त्री अधिकार रैली निकाली गयी। दिल्ली विश्वविद्यालय में दिशा छात्र संगठन और स्त्री मुक्ति लीग ने बड़ी संख्या में पर्चे बांटे और विभिन्न संगठनों के साथ मिलकर रैली निकाली। रोहिणी, बादली और शाहाबाद डेयरी के इलाके में स्त्री मज़दूर संगठन, स्त्री मुक्ति लीग और बिगुल मज़दूर दस्ता की ओर से नुक्कड़ सभाएं करते हुए पर्चे बांटे गये और विरोध प्रदर्शन किया गया। ग़ाज़ियाबाद और नोएडा में भी इन संगठनों की ओर से पर्चा वितरण और प्रदर्शन किये गये।

लखनऊ में 30 दिसम्बर को सैकड़ों युवाओं, नागरिकों और बुद्धिजीवियों ने स्त्रियों के अपमान और उत्पीड़न के हर रूप के खिलाफ़ लड़ाई को जारी रखने और व्यापक बनाने का संकल्प लिया। सरोजिनी नायडू पार्क से शुरू हुई संकल्प रैली नावेल्टी चौक, दारुल शफा से होते हुए जीपीओ पार्क पहुंची जहां पर सभा के बाद फिर से रैली हजरतगंज होते हुए प्रेस क्लब पहुंचकर समाप्त हुइ।

सभा में दुख और आक्रोश से भरे हुए वक्ताओं ने कहा कि दिल्ली में 16 दिसंबर को दरिंदों की हैवानियत का शिकार बनी बहादुर लड़की 13 दिनों तक जूझने के बाद मौत से अपनी लड़ाई भी हार गई, लेकिन हम इस लड़ाई को बेकार नहीं जाने देंगे। हमें सत्ताधाारियों आर ावपक्ष क घाड़याला आसू नहा इसाफ़ चाहिए। सभा के अन्त में मशालें लेकर युवाओं ने शपथ ली कि इस बार वे नया साल नहीं मनाएंगे और नये साल में हत्यारे बलात्कारियों को सज़ा दिलाने के लिए संघर्ष और तेज करने का संकल्प लेंगे। उन्होंने स्त्री की गुलामी और स्त्री उत्पीड़न के सभी रूपों के खिलाफ़ तथा उन्हें पैदा करने वाले सामाजिक ढांचे को तोड़ डालने के लिए संघर्ष संगठित करने का भी संकल्प लिया। रैली में बड़ी संख्या में लखनऊ इंजीनियरिंग कालेज तथा लखनऊ विश्वविद्यालय के छात्र-छात्राएं, नागरिक, बुद्धिजीवी और सामाजिक कार्यकर्ता शामिल हुए।

गोरखपुर में भी बिगुल मज़दूर दस्ता और दिशा छात्र संगठन के कार्यकर्ताओं ने इस मुद्दे पर शहर भर में पर्चे बांटे, नुक्कड़ सभाएं कीं और रैली निकाली।

पंजाब में लुधियाना में बिगुल मज़दूर दस्ता और नौजवान भारत सभा की ओर से नुक्कड़ सभाएं, पर्चा वितरण और रैलियां की गयीं। चण्डीगढ़ में स्त्री मुक्ति लीग की कार्यकर्ताओं ने साइकिल रैली निकाली और नुक्कड़ सभाएं करते हुए लोगों तक अपनी बात पहुंचायी।

मुम्बई में पक्षधर विचार मंच के बैनर तले मुम्बई विश्वविद्यालय के छात्र-शिक्षक-कर्मचारियों ने कलीना कैम्पस से रैली निकाली जिसमें बड़ी संख्या में मुम्बई के सामाजिक-राजनीतिक कार्यकर्ता भी शामिल हुए।

– बिगुल संवाददाता

पूँजीवादी–पितृसत्तात्मक बर्बरता को नेस्तनाबूद कर देने के सही रास्ते की पहचान करो!

लेकिन इसमें कोई दो राय नहीं है कि ऐसे जघन्य अपराधों के लिए क़ानून में फाँसी की सज़ा निर्धारित की जानी चाहिए। कई पूँजीवादी मानवतावादी और यहाँ तक कि उदारतावादी संक्रमण के शिकार वामपन्थी बुद्धिजीवी और संगठन कह रहे हैं कि फाँसी की सज़ा का ही उन्मूलन कर दिया जाना चाहिए । इसके लिए वे यह तर्क दे रहे हैं कि हर मानवीय जीवन क़ीमती होता है और फाँसी की सज़ा एक बर्बर समाज की निशानी है। लेकिन ऐसे दुर्लभ अपराधी जो मनुष्य होने की शर्तों को ही खो चुके हैं, उनके लिए एक सभ्य समाज क्या सज़ा निर्धारित करेगा? उनके लिए जो बलात्कार करने के बाद एक युवती के जननांगों को छिन्न-भिन्न कर देते हैं और उसे जान से मारने की हर सम्भव कोशिश करते हैं क्या उन्हें मनुष्यों की श्रेणी में रखा जा सकता है? क्या उन लोगों के लिए फाँसी अलावा कोई और सज़ा भी हो सकती है जो 3 साल की बच्ची से सामूहिक बलात्कार कर सकते हैं? ऐसे लोग अमानवीकरण के चरम पर पहुँच चुके हैं और ऐसे लोगों के लिए किसी भी समाज में मौत से कम कोई सज़ा नहीं होनी चाहिए। जो लोग सैद्धान्तिक तौर पर फाँसी की सज़ा की मुख़ालफ़त करते हैं उन्हें अपने बुर्जुआ मानवतावादी पूर्वाग्रहों पर सोचना चाहिए।

16 दिसम्बर की घटना के बाद देश भर में जनता रोष और घृणा से सड़कों पर है। लेकिन इसके बावजूद राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, जमात-ए-इस्लामी हिन्द आदि जैसे फ़ासीवादी धार्मिक कट्टरपन्थी संगठनों ने पूरी नंगई और बेशरमी के साथ अपनी स्त्री-विरोधी सोच को सामने रख दिया है। संघ के प्रमुख मोहन भागवत ने बयान दिया कि बलात्कार की घटनाएँ इसलिए घटित हो रही हैं क्योंकि पारम्परिक हिन्दू संस्कृति का पालन नहीं किया जा रहा है। इस संस्कृति के मुताबिक़ औरतों को केवल गृहिणी की भूमिका अदा करनी चाहिए। उन्हें चूल्हे-चौखट तक सीमित रहना चाहिए। भागवत के मुताबिक़ बाहर निकलकर रोज़ी-रोटी कमाने का काम सिर्फ़ पुरुषों को करना चाहिए। इसके अलावा भागवत ने यह भी कहा कि बलात्कार के मामले 'भारत' नहीं बल्कि 'इण्डिया' में होते हैं, जहाँ पश्चिमी संस्कृति और मूल्यों का प्रभाव है। ज़ाहिर है कि संघ के फ़ासीवादियों का पूरा दृष्टिकोण झूठों, फरेबों और स्त्री-विरोधी मूल्य-मान्यताओं पर टिका हुआ है। सभी जानते हैं कि बलात्कार के जितने मसले शहरों में सामने आ रहे हैं और पढ़े-लिखे तबक़ों में सामने आ रहे हैं, उतने ही मसले गाँवों में भी घटित हो रहे हैं। बस फ़र्क़ यह है कि शहरों में ये मामले जल्दी सामने आ जाते हैं और गाँवों में होने वाले बलात्कारों की ख़बरें कभी मीडिया में नहीं आतीं। लेकिन गाँवों में धनी किसानों के लुच्चे-लफंगे लड़के, उच्च जातियों के दबंग और अन्य व्यापारियों-ठेकेदारों के लड़के ग़रीबों और दलितों की स्त्रियों के साथ जघन्य और बर्बर बलात्कारों को अंजाम देते हैं। अभी कुछ ही दिन पहले महाराष्ट्र में एक आदिवासी लड़की के साथ सामूहिक बलात्कार की घटना घटित हुई है। लेकिन भागवत 'महान हिन्दू संस्कृति' की श्रेष्ठता को साबित करने के लिए झूठ पर झूठ बोल रहा है। अगर भागवत यह मानता है कि महिलाओं को केवल गृहिणी होना चाहिए और घर की लक्ष्मण रेखा को नहीं लाँघना चाहिए तो सबसे पहले उसे अपने चुनावी संगठन भाजपा की सभी महिला नेताओं, जैसे कि सुषमा स्वराज, उमा भारती, मीनाक्षी लेखी आदि को यह आदेश देना चाहिए कि वे संसद-विधानसभाओं से इस्तीफ़ा देकर घर में चूल्हा-चौखट सम्भालें और अपने पति की सेवा करें। लेकिन संघ घर की चौहद्दी में मेहनतकश वर्ग की जुझारू औरतों और छात्राओं-युवतियों को क़ैद करना चाहता है। वह चाहता है कि क्रान्ति की आधी शक्ति घरों में क़ैद हो जाये ताकि फ़ासीवादी संगठनों के नापाक मंसूबे कामयाब हो सकें।

16 दिसम्बर 2012

यह दिन याद दिलाता रहेगा
हमें उन अदृश्य बेड़ियों, यंत्रणागृहों और कब्रगाहों की
जो हर औरत की नियति है इस अँधोरे समय में।
यही दिन था जब दिल्ली के दरिन्दों की हैवानियत की शिकार बनी
हमारी बहादुर बहन।
तेरह दिनों तक मौत से जूझने के बाद वह चिरनिद्रा में सो गयी,
देश की तमाम औरतों, तमाम इंसफ़पसन्द नागरिकों और युवाओं की
आत्माओं को जगाकर।
सड़कों पर बह निकला आक्रोश का दहकता लावा,
भयाक्रान्त सत्ताधारी कानून व्यवस्था दुरुस्त करने के लिए
देने लगे आश्वासन,
करने लगे घोषणाएँ, बहाते रहे घड़ियाली आँसू।
बहनो! साथियो!
इन घड़ियाली आँसुओं और सुधार की पैबन्दसाज़ियों से
धोखा नहीं खाना है हमें।
बेशक, यदि हम संगठित हो संघर्ष करें
तो हासिल कर सकते हैं कुछ सुरक्षा और कुछ अधिकार
इस पूँजीवादी व्यवस्था की चौहद्दी के भीतर भी।
लेकिन यदि चाहिए मर्दवादी उत्पीड़न के सभी रूपों का खात्मा,
यदि चाहिए सच्चे अर्थों में समानता और न्याय
तो लड़नी होगी एक लम्बी लड़ाई
इस पूँजीवादी व्यवस्था के ख़िलाफ़ भी
तमाम शोषित-उत्पीड़ित मेहनतकश अवाम के साथ मिलकर।

अगर हिन्दू कट्टरपन्थी और फ़ासीवादी अपने सड़े-गले घृणास्पद विचारों की बेशरमी से खुलेआम उल्टी कर रहे हों, तो इस्लामी कट्टरपन्थी कैसे पीछे रह सकते हैं? जमात-ए-इस्लामी हिन्द के कठमुल्लों ने माँग की है कि बचपन से लड़के और लड़कियों को अलग पढ़ाया जाये, अलग-अलग परिवेश में रखा जाये। उन्हें लगता है कि इससे मानसिक रुग्णता और बलात्कार पर लगाम कसी जा सकती है। लेकिन इन कठमुल्लों को इस बात का भान तक नहीं है कि यह सोच स्वयं मानसिक रूप से रुग्ण है और यही बलात्कार जैसी घटनाओं को जन्म देती है। हमारे समाज में बचपन से लड़के और लड़कियों के बीच जो पार्थक्य पैदा किया जाता है उसी के कारण लड़के और लड़कियाँ एक-दूसरे के लिए रहस्य और अबूझ पहेली बन जाते हैं। यही ग्रन्थि आगे चलकर मानसिक रुग्णता की तरफ़ जाती है और अपराधियों को जन्म देती है। इन धार्मिक कट्टरपन्थी फ़ासीवादियों से किसी और बात की उम्मीद भी नहीं की जा सकती थी। ये ही तो वे लोग हैं जो औरतों के ख़िलाफ़ तरह-तरह के फतवे जारी करते रहते हैं। कभी उनके मोबाइल के इस्तेमाल पर रोक, कभी जींस पहनने पर रोक, कभी उनके काम करने पर रोक! इनका बस चले तो औरतें महज़ बच्चा पैदा करने की मशीन बना दी जायें! ये वे ताक़तें हैं जो हमारे देश और समाज को मध्य युग में वापस ले जाना चाहती हैं। अगर ये अपनी चाल में सफल होते हैं तो इसका सबसे बड़ा नुक़सान मज़दूर वर्ग को उठाना पड़ेगा। मज़दूर औरतों के काम करने पर पाबन्दी लग जाये तो करोड़ों घरों में चूल्हा तक नहीं जलेगा। उनके काम करने से उनकी गरिमा और उनके सम्मान पर कोई चोट नहीं होती। मज़दूर औरतों की गरिमा और सम्मान पर चोट करने का काम तो पूँजी के नशे में चूर मालिक वर्ग के अपराधी करते हैं। इसका सबसे बड़ा सबूत है नोएडा में एक मज़दूर महिला के साथ किया गया सामूहिक बलात्कार और उसकी हत्या। इस हत्या को दबंग जातियों के कुछ गुण्डों ने अंजाम दिया है। सपा की अखिलेश यादव की सरकार अभी से अपने जातिगत आधार को बचाने के लिए इन अपराधियों को बचाने की कवायद में लग गयी है। ऐसी हज़ारों घटनाएँ देश के अलग-अलग कोनों में रोज़ ही घटित हो रही हैं। जिनके पास पैसे की ताक़त है वे उसके बल पर सबकुछ हासिल कर लेने की हवस में अन्धे हो गये हैं। इनके निशाने पर सबसे ज़्यादा ग़रीब घरों की लड़कियाँ और मज़दूर औरतें होती हैं। क्योंकि इनके ख़िलाफ़ अपराध करके ये हत्यारे और बलात्कारी अपने आपको सज़ा से परे महसूस करते हैं।

तमाम पार्टियों के मन्त्री, विधायक, सांसद और अन्य नेता ऐसी किसी भी घटना के बाद समाज में औरतों के लिए मौजूद स्पेस को और कम करने की बात करने लगते हैं। कोई कहता है कि स्त्रियाँ ही बलात्कार के लिए पुरुष को उकसाती हैं, कोई कहता है कि यदि लड़कियाँ जींस और स्कर्ट पहनना छोड़ दें तो स्त्री-विरोधी अपराध नहीं होंगे, औरतों को 8 बजे के बाद घर से नहीं निकलना चाहिए, वग़ैरह! अगर देश की प्रमुख चुनावी पार्टियों के नेताओं, सांसदों और विधायकों के बयानों पर नज़र डालें तो इनकी स्त्री-विरोधी सोच खुलकर सामने आ जाती है। कांग्रेस के एक राजस्थानी विधायक ने कहा कि स्त्रियों के स्कर्ट पहनने पर रोक लगा दी जानी चाहिए। एक भाजपा विधायक ने कहा कि औरतें अगर लक्ष्मण रेखा पार करेंगी, यानी घर से बाहर निकलेंगी तो उनके साथ बलात्कार तो होगा ही! सपा के एक नेता ने कहा कि औरतों को अपने पिता और भाई के अलावा किसी अन्य के साथ सड़क पर नहीं निकलना चाहिए। अगर वे अकेले या किसी अन्य पुरुष के साथ सड़क पर निकलती हैं तो उनके साथ बलात्कार तो होगा ही! यही बात तृणमूल कांग्रेस प्रमुख ममता बनर्जी और उनके एक विधायक ने भी कही। महाराष्ट्र नवनिर्माण सेना के गुण्डे राज ठाकरे ने बयान दिया है कि देश में बलात्कार के बढ़ते मामलों के लिए ज़िम्मेदार बिहार के लोग हैं! अगर ऐसा होता तो स्त्री-विरोधी अपराध के मामलों में बिहार सबसे आगे होता। लेकिन इस मामले में हरियाणा, उत्तर प्रदेश, दिल्ली, राजस्थान और महाराष्ट्र सबसे आगे हैं और अधिकांश मामलों में आरोपी इन्हीं राज्यों के नवधनाढ्य वर्गों के लोग हैं। ग़ौरतलब बात यह है कि ये नसीहतें वे लोग दे रहे हैं जो कि ख़ुद बलात्कार और स्त्री-विरोधी अपराधों के तमाम मामलों में फँसे हुए हैं! ये बलात्कारी और अपराधी देश की महिलाओं को नसीहतें दे रहे हैं कि वे घर से न निकलें, ये पहनें-वो न पहनें, आदि! इनकी पूरी मानसिकता समाज के सामने आ गयी है। स्त्रियों की गुलामी के लिए सबसे ज़्यादा ज़िम्मेदार तो इस देश के पूँजीवादी दल और उनके नेता हैं।

पुलिस की पूरी मानसिकता क्या है यह तहलका पत्रिका द्वारा किये गये स्टिंग ऑपरेशन में देश के सामने आ चुकी है। राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के आला पुलिस अधिकारियों का मानना है कि लड़कियों ने पैसों के लिए यौन सम्बन्ध बनाने का धन्धा शुरू कर दिया है, लड़कियों के कपड़े देखकर पुरुष के अन्दर बलात्कार की इच्छा जाग जाती है, वग़ैरह। ऐसी घिनौनी मानसिकता रखने वालों से सुरक्षा की उम्मीद करना मूर्खता होगी। ज़ाहिर है, हम एक पूँजीवादी, पितृसत्तात्मक समाज में जी रहे हैं और इस मानसिकता को

(पेज 5 पर जारी)

पूँजीवादी–पितृसत्तात्मक बर्बरता को नेस्तनाबूद कर देने के सही रास्ते की पहचान करो!

(पेज 4 से आगे)

ज़िन्दा रखने, पालने-पोसने और आगे बढ़ाने का काम सबसे पहले इस पूरी व्यवस्था के कर्ता-धर्ता करते हैं। लेकिन हम अगर वाक़ई इस घिनौने माहौल से मुक्ति चाहते हैं, अगर हम इस पाशविकता से आज़ादी चाहते हैं तो महज़ अपना गुस्सा निकालने और इस समाज का विश्लेषण करके छोड़ देने से कुछ नहीं बदलने वाला। सवाल यह है कि यह घटनाएँ लगातार बढ़ क्यों रही हैं? दिल्ली में 16 दिसम्बर को जो कुछ हुआ उसके बाद देश भर में प्रदर्शन और विरोध हुआ। लेकिन इसके बावजूद 16 दिसम्बर के बाद एक दिन भी नहीं बीता है जब देश के किसी न किसी हिस्से से बलात्कार की ख़बरें न आयीं हों। 30 दिसम्बर को ही दिल्ली की एक चलती बस में ही 16 वर्षीय किशोरी से बलात्कार का प्रयास किया गया। यह क्लस्टर बस सेवा की एक बस में हुआ जिसमें सरकार ने सरकारी बसें 'पब्लिक प्राईवेट पार्टनरशिप' के नाम पर निजी मालिकों और ठेकेदारों को चलाने के लिए दी हैं। साफ़ है कि महज़ विरोध प्रदर्शनों और भड़ास निकालने से कुछ नहीं बदलेगा। हमें जो सवाल पूछने की ज़रूरत आज सबसे ज़्यादा है वह यह है कि ऐसे अपराधों के लिए ज़िम्मेदार कौन है? कौन हमारा दुश्मन है जिससे हमें लड़ना है? और दूसरा सवाल यह है कि हमें लड़ना कैसे है?

बढ़ते स्त्री-विरोधी अपराधों के ज़िम्मेदार देश के नवधनाढ्य वर्ग और पूँजीवादी-पितृसत्तात्मक मूल्य-मान्यताएँ और संस्कृति है!

स्त्री-विरोधी अपराध कोई नयी बात नहीं है। जबसे पितृसत्तात्मक समाज अस्तित्व में आया है, तबसे ये अपराध लगातार होते रहे हैं। पहले इनका रूप अलग था और आज इनका रूप अलग है। सामन्ती समाज में तो स्त्रियों के उत्पीड़न को एक प्रकार की वैधता प्राप्त थी; जिस समाज में कोई सीमित पूँजीवादी अधिकार भी नहीं थे, वहाँ परदे के पीछे और परदे के बाहर स्त्रियों के ख़िलाफ़ अपराध होते थे और वे आम तौर पर मुद्दा भी नहीं बनते थे। पूँजीवादी समाज में इन स्त्री-विरोधी अपराधों ने एक अलग रूप अख़्तियार कर लिया है। अब क़ानूनी तौर पर, इन अपराधों को वैधता हासिल नहीं है। लेकिन इस पूँजीवादी समाज में एक ऐसा वर्ग है जिसके जेब में क़ानून, सरकार और पुलिस सबकुछ है। यह वर्ग ही मुख्य रूप से वह वर्ग है जो ऐसे अपराधों को अंजाम देता है। पूँजीवादी समाज के अधिक से अधिक रुग्ण और लम्पट होते जाने के साथ ये अपराध भी अधिक से अधिक घिनौने और बीमार क़िस्म के बनते गये हैं। और ऐसे अपराधों की बारम्बारता में भी वृद्धि हुई है।

मौजूदा तौर पर, पूरे देश में बलात्कार व अन्य स्त्री-विरोधी अपराधों की संख्या हर साल बढ़ रही है। दिल्ली, उत्तर प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान इस तरह के मामलों में सबसे आगे हैं। पिछले बीस वर्षों में स्त्री-विरोधी अपराधों में हुई असामान्य बढ़ोत्तरी के कारणों को समझना भी ज़रूरी है। 16 दिसम्बर को दिल्ली में जो हुआ वह कोई एक अकेली घटना नहीं, बल्कि एक लगातार बढ़ते रुझान की प्रतीक घटना है। ये कौन-सी सामाजिक ताक़तें हैं जो इन अपराधों के लिए ज़िम्मेदार हैं? वह कौन-सी मानसिकता है जो इनके लिए ज़िम्मेदार है और कौन-से वर्ग इस मानसिकता को खाद-पानी दे रहे हैं?

अगर हम ऐसे अपराधों के आँकड़े उठाकर देखें तो हम पाते हैं कि ऐसे अपराधों के लिए सबसे ज़्यादा ज़िम्मेदार है नवधनाढ्यों का वह वर्ग जो नयी आर्थिक नीतियों के बीस वर्षों में गाँवों और शहरों में अस्तित्व में आया है। यह वह नवधनाढ्य वर्ग है जिसे नयी आर्थिक नीतियों ने जन्म दिया है, पाला-पोसा है और इसके अन्दर पैसे की ताक़त का अहंकार भरा है। शहरों में प्रापर्टी डीलरों, टटपुंजिया व्यापारियों, ट्रांसपोर्टरों, शेयर मार्केट के दलालों, तरह-तरह के कमीशनख़ोरों और सट्टेबाज़ों, और यहाँ तक कि तरह-तरह के नये क़िस्म के उद्योगों में काम करने वाला पढ़ा-लिखा उच्च मध्य वर्ग, आम तौर पर इन अपराधों में आरोपी होता है। गाँवों में धनी कुलकों और फार्मरों का एक पूरा वर्ग अस्तित्व में आया है जिसके पास अचानक काफ़ी पैसा आ गया है। कुछ के पास यह पैसा खेती के जरिये आया है, तो कुछ के पास रियल एस्टेट के बाज़ार में ज़ोर आने और ज़मीनों की क़ीमतें बढ़ने के साथ आया है। ये दूसरी क़िस्म आम तौर पर महानगरों के आस-पास और राजमार्गों के पास पड़ने वाले गाँवों में ज़्यादा पायी जाती है, मिसाल के तौर पर, दिल्ली, गुड़गाँव, फरीदाबाद, नोएडा, ग़ाज़ियाबाद, आदि के आस-पास बसे गाँव। ये ही वे इलाक़े हैं जिनमें बड़े पैमाने पर स्त्री-विरोधी अपराध हो रहे हैं। यहाँ पूँजीवादी विकास के पहले से ही खाप पंचायतों का ज़ोर रहा है। ये वे संस्थाएँ हैं जिनके घनघोर स्त्री-विरोधी चरित्र के बारे में ज़्यादा कुछ कहने की ज़रूरत नहीं है। पूँजीवादी विकास के बाद प्राक्-पूँजीवादी निरंकुशता के साथ पूँजी का अहंकार और पैसे के दम पर कुछ भी पा लेने की हवस मिल गयी है, और इसने एक भयंकर मानवद्रोही, स्त्री-विरोधी और घटिया क़िस्म का वर्ग पैदा किया है। यदि आँकड़ों पर निगाह डालें तो शहरों और गाँवों में नयी आर्थिक नीतियों के लागू होने के बाद से अस्तित्व में आया यह लोभी-लालची, स्त्री-विरोधी मानवद्रोही वर्ग सबसे ज़्यादा ज़िम्मेदार है। इनमें धनी किसानों, व्यापारियों, छोटे और मँझोले उद्योगपतियों, प्रापर्टी डीलरों, ट्रांसपोर्टरों, शेयर बाज़ार के दलालों का वर्ग सबसे प्रमुख है।

एक दूसरा वर्ग है जो इसी नवधनाढ्य वर्ग द्वारा फेंके गये टुकड़ों पर पलता है और इसी की संस्कृति में ढला हुआ है। यह वर्ग है लम्पट टटपुंजियों और लम्पट सर्वहाराओं का वर्ग जो तमाम छोटे उद्योग-धन्धों, दुकानों, व्यापारिक प्रतिष्ठानों आदि में काम करता है, या ट्रांसपोर्टरों और प्रापर्टी डीलरों का कारकून होता है। यह कोई मज़दूरी का काम नहीं करता, बल्कि मालिकों का निजी चमचा, कारकून और दासवृत्ति का शिकार व्यक्ति होता है। इसमें खलासी, कण्डक्टरों, हेल्परों का भी एक वर्ग है जो निजी मालिकों की बसों में चलता है। दिल्ली के उदाहरण पर नज़र डालें तो यह बात और अच्छी तरह से साफ़ हो जाती है। दिल्ली में पहले ब्लू लाइन बसें चलती थीं। ट्रांसपोर्टर माफ़ियाओं के बीच दिल्ली में भारी प्रतिस्पर्द्धा है। ऐसे में, कोई भी ट्रांसपोर्टर जिसे दिल्ली में बसें चलवानी हो वह इस बात के लिए बाध्य है कि वह अपनी बसों में अपराधी मानसिकता के लम्पटों को चालक और कण्डक्टर के तौर पर रखे। अन्यथा, उसकी बस दिल्ली की सड़कों पर चल ही नहीं सकती क्योंकि जिस ट्रांसपोर्टर के पास अपराधी किस्म का स्टाफ़ होगा, वह उसकी बस को किसी सड़क के कोने में खड़ा करवा देगा। मालिक अगर मुनाफ़ा चाहता है, तो वह बस चलाने का ठेका किसी अमानवीकृत अपराधी गिरोह को देने के लिए बाध्य है। अब ब्लू लाइन बसें बन्द हो गयी हैं और सरकार 'पब्लिक प्राईवेट पार्टनरशिप' के नाम पर अपनी बसों को निजी मालिकों को ठेके पर दे रही है। इन बसों को ऑरेंज बस सेवा या क्लस्टर बस सेवा कहा जाता है। यह पूरी योजना ही नवधनाढ्य जाट कुलकों को लाभ पहुँचाने के लिए बनायी गयी है। दिल्ली में चाहे शीला दीक्षित की सरकार रहे या भाजपा की सरकार आ जाये, वे धनिक जाटों की लॉबी को कभी नाराज़ नहीं कर सकती है। नतीजतन, निजी ब्लू लाइन सेवा बन्द करने के बाद दिल्ली सरकार ने जनता को धोखा देते हुए उसे दूसरे नाम से शुरू कर दिया है। आपको शायद याद होगा कि आज से चार-पाँच साल पहले दिल्ली में ब्लू लाइन बसों द्वारा की गयी दुर्घटनाओं में कई जानें गयी थीं, और जनता के विरोध और आन्दोलन के फलस्वरूप दिल्ली सरकार को यह सेवा बन्द करनी पड़ी थी। लेकिन अब जो सेवा क्लस्टर बस सेवा के नाम पर चल रही है उसमें तो मालिकों और ट्रांसपोर्टरों को और फ़ायदा है, क्योंकि इसमें बस तो सरकार की है पर मुनाफ़े का बड़ा हिस्सा उनकी जेब में चला जाता है। ये निजी मालिक इस नयी सेवा में उन्हीं अपराधी और पाशविक मानसिकता वाले लोगों को लगा रहे हैं जो ब्लू लाइन सेवा में लगाये जाते थे। इस सेवा के अलावा दिल्ली में सरकार की आज्ञा से चार्टर्ड बसें भी चलती हैं, जो कि ऐसे ही मालिकों और ऐसे ही अपराधी क़िस्म के स्टाफ़ द्वारा चलायी जाती हैं। 16 दिसम्बर को हुई घटना एक चार्टर्ड बस में ही हुई थी। स्पष्टतः, निजी परिवहन की व्यवस्था के रहते दिल्ली की बसें स्त्रियों के लिए सुरक्षित नहीं हो सकतीं। इसके अलावा, दिल्ली की सड़कों पर कार में उठा लिये जाने आदि की घटनाओं के लिए भी यही वर्ग ज़िम्मेदार है। लम्पट सर्वहाराओं का यह वर्ग सर्वहारा वर्ग की सोच और संस्कृति से कोई सम्बन्ध नहीं रखता है। इसका सर्वहारा चरित्र क्षरित और खण्डित हो चुका होता है। यह अपने वर्ग को छोड़ टटपुंजिया वर्गों में शामिल हो चुका होता है। यह मालिक का चमचा और सहायक बन चुका होता है और उसके पालतू कुत्ते जैसा बर्ताव करता है। यह वर्ग मानव होने की बुनियादी शर्तों को भी खो चुका होता है। ये मज़दूर नहीं हैं। ये केवल किसी ग़रीब के घर में पैदा हुए होते हैं। लेकिन ये अपने वर्ग मूल से पूरी तरह कट चुके होते हैं और लम्पट अपराधी में तब्दील हो चुके होते हैं। इनके लिए लम्पट सर्वहारा शब्द का इस्तेमाल सिर्फ़ इसीलिए किया जाता है। अन्यथा, इनमें सर्वहारा वर्ग जैसा कुछ भी नहीं है। वास्तव में, इनका टटपुंजिया वर्ग में रूपान्तरण हो चुका होता है। और ये टटपुंजिया वर्ग के भी सर्वाधिक अमानवीकृत और अपराधी तत्व सिद्ध होते हैं।

हमारा विश्लेषण साफ़ तौर पर बताता है कि नयी आर्थिक नीतियों द्वारा जन्मा और पाला-पोसा गया यह अपराधी प्रवृत्तियों से भरा नवधनाढ्य वर्ग और उसके टुकड़ों पर पलने वाला लम्पट टटपुंजिया वर्ग और लम्पट सर्वहारा वर्ग के दासवृत्ति के शिकार कारकूनों का पूरा वर्ग, जो इन्सान होने की बुनियादी पूर्वशर्तों को खो चुका है, स्त्री-विरोधी अपराधों के लिए विशेष तौर पर ज़िम्मेदार है। हमारा मानना है कि स्त्री-विरोधी अपराधों और विशेष तौर पर बलात्कार की घटनाओं के पीछे मौजूद कारकों का वर्ग विश्लेषण करना बेहद ज़रूरी है। समूची पुरुष जाति इन अपराधों के लिए ज़िम्मेदार नहीं है, भले ही उनमें से अधिकांश के मन में पितृसत्तात्मक मूल्यों का प्रभाव क्यों न हो। लेकिन अगर पितृसत्तात्मक मूल्यों के प्रभाव की ही बात करें तो हमें लगता है कि रूढ़िवादी महिलाएँ उसकी ज़्यादा ख़तरनाक वाहक होती हैं, सिर्फ़ पुरुषों की ही बात क्यों करें? कुछ लोग इन घटनाओं के बाद तमाम पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिख रहे हैं जो इस समस्या के वर्ग मूल को देखने से इंकार करते हैं, जैसे, 'बलात्कार की संस्कृति', 'पुरुष होने की शर्म', 'बलात्कारियों का देश' आदि-आदि। हमें लगता है कि ऐसे लेखों के लेखकों ने न तो कभी किसी स्त्री आन्दोलन में शिरक़त की है और न ही वे इस समस्या के समाधान के बारे में सोच रहे हैं। इस क़िस्म के अनैतिहासिक, मनोवैज्ञानिक और मूर्खतापूर्ण सामान्यीकरण से हम किसी नतीजे पर नहीं पहुँचेंगे और न ही इन लेखों में कोई विश्लेषण है। बस कुछ नारीवादी प्रतीत होती नारेबाज़ियाँ हैं। हम यह कहने से डरते क्यों हैं कि कौन-से वर्ग के लोग आम तौर पर इन अपराधों के लिए ज़िम्मेदार हैं? हम स्पष्ट पहचान क्यों नहीं करते अपने शत्रुओं की? शत्रुओं की स्पष्ट पहचान किये बिना कोई लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती है। इन अपराधों का एक स्पष्ट वर्ग चरित्र है और उसे पहचानना होगा।

इन दो सामाजिक स्रोतों के अतिरिक्त एक तीसरा स्रोत भी है जो

(पेज 6 पर जारी)

कहाँ से पैदा होते हैं बलात्कारी, हत्यारे, लम्पट अमानवीय पशुवत जीव!
पूँजीवादी सभ्यता-संस्कृति की जारज औलादें हैं
ये ज़हरीले नाग।
ये स्त्री-विरोधी परम्पराओं-रूढ़ियों के
बिलों-बाँबियों में छिपे रहते हैं,
जीते हैं रुग्ण संस्कृति की नशीली खुराक पर,
लोभ-लाभ की संस्कृति और अन्धी प्रतिस्पर्द्धा
इनके ज़हर को मारक बनाती है,
आम लोगों की कायरता और तटस्थता
इनकी हिम्मत बढ़ाती है,
स्त्री-शरीर को उपभोक्ता वस्तु
के रूप में परोसता मनोरंजन उद्योग
इनका उन्माद बढ़ाता है।
बेशक, इन ज़हरीले नागों का फन कुचलना होगा,
पर इतना ही काफ़ी नहीं होगा।
इन्हें क्षण-प्रतिक्षण जन्म देने वाली
मानवद्रोही सामाजिक व्यवस्था
और उसकी रुग्ण संस्कृति के विरुद्ध
एक लम्बी, फैसलाकुन लड़ाई लड़नी होगी,
प्रतिगामी परम्पराओं-रूढ़ियों के बिलों-बाँबियों को
नष्ट करना होगा
और शराफ़त की आड़ लेने वाले
कायर और तटस्थ लोगों की आँखों के सामने
खड़े करने होंगे कुछ जलते हुए प्रश्नचिन्ह!

पूँजीवादी–पितृसत्तात्मक बर्बरता को नेस्तनाबूद कर देने के सही रास्ते की पहचान करो!

(पेज 5 से आगे)

स्त्री-विरोधी मनोविज्ञान को लगातार खाद-पानी दे रहा है और वह आज से नहीं बल्कि सदियों से समाज में मौजूद रहा है। हर नयी उत्पादन व्यवस्था और सामाजिक ढाँचे के आने के साथ उसका स्वरूप बदल जाता है। यह तीसरा स्रोत है पितृसत्तात्मक मानसिकता, मूल्य और संस्कृति। पितृसत्ता के ख़िलाफ़ संघर्ष स्त्री मुक्ति आन्दोलन का एक अहम मुद्दा है। लेकिन यह भी समझना होगा कि इन पितृसत्तात्मक मूल्यों और मान्यताओं के ख़िलाफ़ समूची पूँजीवादी व्यवस्था के ख़िलाफ़ संघर्ष का एक हिस्सा है, ठीक उसी प्रकार जैसे सामन्तवाद के दौर में पितृसत्ता के ख़िलाफ़ संघर्ष सामन्तवाद-विरोधी संघर्ष का एक अभिन्न अंग था। इसका यह अर्थ कतई नहीं है कि हम पितृसत्ता-विरोधी संघर्ष की स्वायत्तता को नहीं मानते और ऐसा समझते हैं कि पूँजीवाद-विरोधी संघर्ष स्वत: ही पितृसत्ता का नाश कर देगा। निश्चित तौर पर, पूँजीवाद के नाश तक पितृसत्ता के विरुद्ध संघर्ष को स्थगित नहीं किया जा सकता है। उसके ख़िलाफ़ लगातार सांस्कृतिक धरातल पर और सामाजिक तौर पर संघर्ष करना होगा, प्रचार अभियान चलाने होंगे क्योंकि यह पूँजीवाद के विरुद्ध लड़ने वाली मेहनतकश आबादी को भी बाँट देता है, स्त्रियों को गुलाम बनाता है और उन्हें संघर्ष की ताक़त से काट देता है। लेकिन यह समझना भी एक भूल होगी कि समूची पुरुष आबादी ही दुश्मन है और उसे ही कठघरे में खड़ा करके स्त्रियों की मुक्ति का आन्दोलन भी कहीं नहीं जायेगा। यह भी समझना ज़रूरी है कि पितृसत्ता कोई अपरिवर्तनीय चीज़ नहीं है, बल्कि हर नयी सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था इसे अपनी ज़रूरतों के मुताबिक़ सहयोजित करती है। पूँजीवादी व्यवस्था ने स्त्रियों की मुक्ति की बात की और पुरानी सामन्ती पितृसत्ता के कुछ रूपों पर चोट की, जो उसके कार्य करने में बाधा डालती थी। लेकिन साथ ही उसने स्त्रियों की गुलामी को ख़त्म नहीं किया है बल्कि उसे एक नया पूँजीवादी रूप दिया है। उसने स्त्रियों को भोग की वस्तु से उपभोग की वस्तु में तब्दील कर दिया है। उसने स्त्रियों को माल में बदल दिया है। पुरुषों की श्रम शक्ति भी पूँजीवादी समाज में एक माल होती है, लेकिन स्त्रियों का पूरा वजूद ही पूँजीवादी समाज में एक माल में तब्दील कर दिया जाता है। स्त्रियों का एक हद तक, सीमित समाजीकरण हुआ है, लेकिन यह समाजीकरण एक माल के रूप में है। उसे भावनाओं, दुख, दर्द, तक़लीफ़, खुशी और हर प्रकार के मानवीय गुण से रिक्त एक माल में तब्दील कर दिया जाता है। हनी सिंह जैसे घटिया स्त्री-विरोधी गायक इसी सामाजिक-आर्थिक परिघटना को एक सांस्कृतिक अभिव्यक्ति देते हैं; पूँजीवादी फ़िल्में, टीवी कार्यक्रम और प्रचार स्त्रियों के इसी वस्तुकरण या मालकरण को बढ़ावा देते हैं। इसलिए आज जब पितृसत्ता की बात होगी तो हमें पूँजीवादी पितृसत्ता की बात करनी होगी।

भारत का पूँजीवाद किसी जनवादी क्रान्ति के जरिये नहीं पैदा हुआ, बल्कि एक रुग्ण, क्रमिक और ग़ैर-क्रान्तिकारी प्रक्रिया के जरिये विकसित हुआ। इसने सामन्तवाद से भी समझौते किये और साम्राज्यवाद से भी। नतीजतन, यहाँ पूँजीवाद ने तमाम सामन्ती पितृसत्तात्मक मूल्यों को भी अपने में समाहित किया, लेकिन उनमें भी तमाम तब्दीलियाँ ला दीं। इसलिए आज जब हम पितृसत्तात्मक मूल्यों, मान्यताओं और संस्कृति के विरुद्ध संघर्ष की बात करते हैं, तो उसकी स्वायत्तता को समझते हुए भी, उसे पूँजीवाद से काटकर किसी निरपेक्ष प्रश्न के तौर पर नहीं देख सकते। ऐसा करना वास्तव में बुर्जुआ नारीवाद के गड्ढे में गिरना और पूँजीवाद के ट्रैप में फँसने के समान होगा। दिल्ली में 16 दिसम्बर को जो घटना हुई उसकी शिकार एक मध्यवर्गीय छात्रा थी और वह घटना राजधानी में घटित हुई थी। इन कारणों से वह सुर्खियों में जल्दी आ गयी। निश्चित तौर पर, इस घटना का पुरज़ोर विरोध किया जाना चाहिए और इस पर जनता के असन्तोष का सड़कों पर फूट पड़ना एक स्वागत-योग्य बात है। लेकिन जो भी संवेदनशील और न्यायप्रिय नागरिक, छात्र, स्त्रियाँ और नौजवान इसके ख़िलाफ़ सड़कों पर उतरे उन्हें यह भी सोचना पड़ेगा कि वे कश्मीर और उत्तर-पूर्व में "राष्ट्र की अखण्डता को बरक़रार" रखने के नाम पर सेना द्वारा दमित राष्ट्रीयताओं की महिलाओं के साथ किये गये बलात्कारों के ख़िलाफ़ सड़कों पर उतरने से चूक क्यों गये? वे हरियाणा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश और पूरे देश में दलित महिलाओं के साथ किये जाने वाले बलात्कारों के ख़िलाफ़ चुप क्यों रह गये? वे हर रोज़ मज़दूर महिलाओं के ख़िलाफ़ होने वाले अपराधों के विरुद्ध क्यों नहीं लड़े? यह कुछ बेहद अहम सवाल हैं जिनका जवाब देना स्त्रियों के पूरे आन्दोलन के लिए बेहद ज़रूरी है।

केवल ग़ुस्सा निकालने वाले विद्रोहों से कुछ नहीं बदलेगा! विद्रोह से क्रान्ति की ओर आगे बढ़ने के लिए क्रान्तिकारी विचारधारा और संगठन की ज़रूरत है!

दिल्ली की घटना ने जनता के आक्रोश को बर्दाश्त की हद के बाहर पहुँचा दिया और लोग सड़कों पर उतरे। लेकिन इन विरोध प्रदर्शनों को हम ग़ुस्सा और नफ़रत को निकालने वाले प्रदर्शन ज़्यादा कह सकते हैं। इसमें लोगों ने अपनी भड़ास निकाली, अपना गुस्सा निकाला। निश्चित तौर पर, यह गुस्सा केवल 16 दिसम्बर की घटना को लेकर नहीं था, बल्कि समूचे भारतीय शासक वर्ग और उसकी पार्टियों के ख़िलाफ़ था, जो कि हद से ज्यादा पतित, नंगा, व्याभिचारी, भ्रष्टाचारी और बलात्कारी हो चुके हैं। लेकिन यह समझ अभी इन प्रदर्शनों में शामिल भारी युवा आबादी के पास नहीं है कि ऐसी घटनाएँ संयोग से नहीं होतीं; ये मौजूदा सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था का विचलन या भटकाव नहीं हैं, बल्कि

उसका नियम हैं। मौजूदा व्यवस्था ऐसी घटनाओं को अपनी नैसर्गिक गति से जन्म देती हैं, और संरचनात्मक रूप से उन्हें पुनरुत्पादित करती हैं।

ऐसे में, इस पूरी व्यवस्था को ही तबाह करने का संघर्ष शुरू करना होगा, एक नयी व्यवस्था निर्मित करने का संघर्ष शुरू करना होगा। इसके लिए एक परिवर्तनकारी विचारधारा, राजनीति और उसे लागू करने वाले क्रान्तिकारी संगठन की ज़रूरत होगी, जो चुनावी रास्ते से नहीं बल्कि इन्क़लाबी रास्ते से एक नये समाज, एक नयी व्यवस्था का निर्माण करे। पितृसत्ता और पूँजीवाद के अपवित्र गठबन्धन का मुकाबला करने के लिए मज़दूर वर्ग को क्रान्तिकारी युवाओं, छात्रों और स्त्री आन्दोलन के साथ एकजुटता स्थापित करनी होगी। मज़दूर वर्ग को अपने भीतर मौजूद स्त्री-पुरुष गैर-बराबरी को ख़त्म करना होगा। पुरुष मज़दूरों को यह समझना होगा कि अपनी आधी ताक़त को चूल्हे-चौखट की चौहद्दियों में क़ैद करके वह पूँजीवाद से कभी नहीं लड़ सकते हैं। जो पुरुष स्त्री को गुलाम बनाकर रखेगा, वह स्वयं भी पूँजी का गुलाम बने रहने के लिए अभिशप्त है। हमें मज़दूर आन्दोलन के भीतर लगातार स्त्री-पुरुष समानता के लिए लड़ना होगा, प्रचार करना होगा, पुराने पितृसत्तात्मक मूल्यों के ख़िलाफ़ संघर्ष करना होगा। हमें अपने ट्रेड यूनियन संघर्षों में भी स्त्री मज़दूरों की माँगों को प्रमुखता के साथ रखना होगा और बराबर काम के लिए बराबर मज़दूरी के उसूल को लागू करवाने के लिए लड़ना होगा। स्त्रियों के श्रम को सस्ता बनाकर उनका अतिशोषण न सिर्फ़ स्त्रियों को नुक़सान पहुँचाता है, बल्कि समूचे मज़दूर वर्ग को नुक़सान पहुँचाता है। इसके अलावा, स्त्री मज़दूरों को अपनी माँगों पर प्रभावी ढंग से लड़ने के लिए अपने अलग संगठन भी बनाने होंगे। मध्यवर्गीय स्त्री संगठनों में मज़दूर स्त्रियाँ मध्यवर्गीय स्त्रियों की पिछलग्गू बन जाती हैं, और प्रमुख ट्रेड यूनियनों में भी उन्हें और उनकी माँगों को प्रमुखता के साथ स्थान नहीं मिलता। इसलिए स्त्री मज़दूरों का अलग संगठन न केवल स्त्री मज़दूरों की आर्थिक माँगों पर संघर्ष के लिए ज़रूरी है बल्कि उसकी गरिमा, सम्मान, समानता के लिए संघर्ष के लिए भी ज़रूरी है। समय आ गया है कि मज़दूर वर्ग की राजनीति स्त्री प्रश्न को प्रमुखता के साथ अपने एजेण्डे पर रखे। आधी ताक़त को खुद ही सरेण्डर करके मज़दूर वर्ग कभी भी पूँजीवाद के ख़िलाफ़ विजयी नहीं हो सकता है। अतीत में भी मज़दूर क्रान्तियों और मज़दूर आन्दोलनों में स्त्रियों की महती भूमिका रही है और उसके बिना ये क्रान्तियाँ और आन्दोलन कभी आगे नहीं बढ़ सकते थे। आज भी यह बात उतनी ही सच है। अगर मज़दूर आन्दोलन को आगे बढ़ना है तो उसे औरतों को बराबरी के साथ अपना साथी मानना होगा, अपने भीतर से स्त्री-पुरुष असमानता के हर रूप को समाप्त करना होगा और स्त्री उत्पीड़न के हर रूप के ख़िलाफ़ दृढ़संकल्प होकर लड़ना होगा।

स्त्री मुक्ति के लिए एक पूरी क्रान्तिकारी राजनीति और संगठन की ज़रूरत है। लेकिन विडम्बना की बात यह है कि मौजूदा मध्यवर्गीय युवाओं और नागरिकों के प्रदर्शनों में राजनीति के प्रति ही एक एलर्जी की भावना है। यह अपने पाँव पर कुल्हाड़ी मारने के समान है। भ्रष्ट पूँजीवादी चुनावी राजनीति के ख़िलाफ़ नफ़रत होना लाज़िमी है। लेकिन वह राजनीति का एकमात्र मॉडल नहीं है। जब तक हम इस पूँजीवादी राजनीतिक व्यवस्था का एक क्रान्तिकारी राजनीतिक विकल्प नहीं पेश करेंगे, जब तक हम एक वैकल्पिक इन्क़लाबी राजनीति का निर्माण नहीं करेंगे, तब तक हमारा आन्दोलन एक क़दम भी आगे नहीं जा पायेगा। हम अपना गुस्सा निकालकर घर बैठ जायेंगे और कुछ भी नहीं बदलेगा। इसलिए बेबी टब के गन्दे पानी के साथ बेबी को फेंक देने की भूल करने से बचना होगा। जब तक हम 'अराजनीतिक' होने की नादान ज़िद पाले रखेंगे, तब तक हमारे प्रदर्शनों पर दक्षिणपन्थी राजनीतिक ताक़तों, जैसे कि संघी गिरोह का क़ब्ज़ा होने की सम्भावना बनी रहेगी। या तो यह आन्दोलन क्रान्तिकारी राजनीति का केन्द्र बनेगा या फिर पूँजीवादी राजनीति का। इसलिए सभी युवाओं को समझना होगा कि हम अराजनीतिक हो ही नहीं सकते हैं। वास्तव में, अराजनीतिक होना एक मिथक है। कोई भी आन्दोलन, व्यक्ति या संगठन अराजनीतिक नहीं होता। हर किसी की एक राजनीति होती है और विराजनीतिकरण की राजनीति भी एक राजनीति ही है। और असलियत यह है कि इससे ख़तरनाक कोई राजनीति नहीं है। यह हमारे भीतर मौजूद भितरघाती है, आस्तीन का साँप है। हमें मौजूदा भ्रष्ट चुनावी राजनीति (जिसमें केजरीवाल जैसे मदारी भी शामिल हैं) के बरक्स भगतसिंह की क्रान्तिकारी राजनीति का रास्ता चुनना होगा। इसके बिना, हम एक अन्धी गली में भटकते रहेंगे और शासक वर्ग को ज़्यादा से ज़्यादा हमारे प्रदर्शनों आदि से कुछ असुविधा होगी। बदलेगा कुछ भी नहीं।

मज़दूर वर्ग के नेतृत्व में मेहनतकश जनता की समाजवादी क्रान्ति ही पूँजीवाद और पितृसत्ता से मुक्ति दिला सकती है। पितृसत्ता की संस्कृति, मूल्यों और मान्यताओं के ख़िलाफ़ आज से ही संघर्ष शुरू करना होगा। यह मज़दूर वर्ग के आन्दोलन के भीतर भी पैठ बनाये हुए है और भितरघाती दुश्मन के समान है। हर क़दम, हर साँस इसके ख़िलाफ़ लड़ना होगा और समूची मज़दूर आबादी में, चाहे स्त्री हो या पुरुष, एक वर्ग एकजुटता क़ायम करनी होगी, जो कि स्त्री-पुरुष बराबरी की सोच पर आधारित हो। पितृसत्तात्मक सोच और संस्कृति के ख़िलाफ़ लड़ाई का मोर्चा खोलते हुए यह एक पल को भी नहीं भूलना होगा कि यह पितृसत्ता पूँजीवाद द्वारा पाली-पोसी जा रही है और पूँजीवादी व्यवस्था और समाज को तबाह किये बग़ैर इस पर निर्णायक तौर पर विजय सम्भव नहीं है।

मारुति सुज़ुकी मज़दूर आन्दोलन के समक्ष नयी चुनौतियाँ और उनसे निपटने का रास्ता

● अभिनव

नये साल की शुरुआत मारुति सुज़ुकी वर्कर्स यूनियन ने संघर्ष के नारे से की। हाल ही में, मारुति सुज़ुकी वर्कर्स यूनियन के नेतृत्व में दिल्ली जन्तर-मन्तर पर दो सफल प्रदर्शन किये गये, जिसमें से पहले प्रदर्शन की शुरुआत एक ऑटो मज़दूर सम्मेलन के साथ हुई थी। इन प्रदर्शनों के कारण प्रशासन पर भारी दबाव भी पड़ा, जिसकी निशानी इस रूप में दिखलायी पड़ी कि हरियाणा के मुख्यमंत्री भूपेन्द्र सिंह हुड्डा के बेटे दीपेन्द्र सिंह हुड्डा ने मारुति सुज़ुकी वर्कर्स यूनियन के पदाधिकारियों से बातचीत की। दूसरे प्रदर्शन के बाद मारुति सुज़ुकी वर्कर्स यूनियन के नेतृत्व पर 1 जनवरी के दिन गुड़गाँव में डिप्टी कमिशनर कार्यालय पर प्रदर्शन करने की योजना बनायी गयी। इस मुकाम पर पहुँचने पर यह बात साफ़ हो चुकी है कि मारुति सुज़ुकी मज़दूरों के आन्दोलन में अब एक-एक दिन के प्रदर्शनों का वक़्त बीत चुका है। अगर एक-एक दिन कभी हरियाणा के श्रम मन्त्री तो कभी वहाँ के उद्योग मन्त्री, तो कभी मुख्यमन्त्री के आवास पर प्रदर्शनों के जरिये कुछ होना होता तो अभी तक हमारी सुनवाई हो चुकी होती। लेकिन इन प्रदर्शनों में मज़दूरों को खोखले आश्वासनों के अलावा कुछ भी नहीं मिला। और जब भी मज़दूर इन खोखले वायदों से सन्तुष्ट नहीं होते तो कुछ केन्द्रीय ट्रेड यूनियन संघों के नेता समझाने आते हैं कि संघर्ष करने का एक तौर-तरीक़ा होता है। वे हमें अपने अनुभव की याद दिलाते हैं, वे हमें बताते हैं कि वे खुद पिछले 20-25 वर्ष से बर्ख़ास्त मज़दूर हैं, वगैरह-वगैरह। सहानुभूति और अपने अनुभव का कार्ड खेलकर वे मज़दूरों को समझा देते हैं कि फिलहाल खोखले आश्वासनों से ही हम सन्तोष कर लें। और इसके बाद वे हमें एक और रस्मी प्रदर्शन के लिए बुला लेते हैं।

लेकिन अब यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि एक-एक दिन के प्रदर्शनों और धरनों से कुछ हासिल नहीं होने वाला। अब मज़दूरों को यह समझना होगा कि यह वक़्त आ गया है कि हम एक निर्णायक संघर्ष की तैयारी करें और एक जगह पर खूँटा गाड़कर बैठ जाएँ; वहीं डेरा लगे और वहीं भण्डारा चले! इसके बिना हमारा संघर्ष अब आगे बढ़ना मुश्किल है। अगर हमें कुछ हासिल होना होगा तो इसी रास्ते हासिल होगा। इसके अलावा अब और कोई रास्ता नहीं है। आख़िर कितने दिनों तक अब हमें एक दर से दूसरे दर तक आश्वासन सुनते घूमते रहना होगा? हमारा मानना है कि ऐसे अनिश्चितकालीन धरने के लिए उपयुक्ततम जगह हरियाणा में गुड़गाँव, फरीदाबाद या रोहतक नहीं है, बल्कि दिल्ली में है। हमें एक बार फिर जन्तर-मन्तर पर जाना चाहिए और इस बार वहीं डेरा डाल लेना चाहिए। यही वह जगह है जहाँ से हमारे प्रदर्शन को मीडिया कवरेज मिलेगी और मारुति सुज़ुकी के मज़दूरों का संघर्ष पूरे देश के समक्ष जायेगा; हमारा पक्ष समूचे देश के सामने जायेगा। और इसी प्रक्रिया से प्रशासन और सरकार पर दबाव पड़ेगा कि वह हमारी बातों को सुने और उन पर कोई कार्रवाई करे। इसी के ज़रिये हम हरियाणा सरकार को और केन्द्र सरकार को भी, बातचीत की टेबल पर ला सकते हैं और वे ही मारुति सुज़ुकी के मैनेजमेण्ट को बातचीत की टेबल पर आने के लिए मजबूर कर सकते हैं। ऐसे दबाव के बिना अगर मारुति सुज़ुकी का

मैनेजमेण्ट बातचीत की टेबल पर सीधे आया भी तो वह हमारे सामने किसी शर्मनाक समझौते का प्रस्ताव रखेगा और कहेगा कि अगर यह प्रस्ताव मानना है तो मानो, वरना अपना रास्ता नापो। लेकिन अगर हम सरकार को अपने संघर्ष के ज़रिये झुका दें तो मारुति मैनेजमेण्ट की स्थिति अलग होगी। उसे भी कोई बीच का रास्ता निकालने के लिए मजबूर होना पड़ेगा। वैसे भी गिरफ़्तार मज़दूरों की रिहाई की लड़ाई तो वास्तव में सरकार से है, और बर्ख़ास्त मज़दूरों की बहाली का संघर्ष कम्पनी मैनेजमेण्ट से है। इसलिए हमारे लिए सबसे अच्छा रास्ता यही है कि हम जन्तर-मन्तर, नयी दिल्ली में अनिश्चितकालीन धरने पर बैठ जायें जिसे आगे क्रमिक भूख हड़ताल और उसके बाद अनिश्चितकालीन भूख हड़ताल का रूप दिया जाये। यही वह एकमात्र रास्ता है जिसके ज़रिये यदि कुछ हासिल होना होगा तो होगा। लेकिन मारुति सुज़ुकी आन्दोलन के साथियों को सबसे पहले कुछ भ्रमों और खोखली उम्मीदों से मुक्त होना होगा।

मारुति सुज़ुकी के मज़दूरों ने 1 जनवरी को 2013 की शुरुआत गुड़गाँव के डिप्टी कमिशनर कार्यालय पर प्रदर्शन से की। एम.एस. डब्ल्यू.यू. के नेतृत्व में 1 जनवरी को मारुति सुज़ुकी के मज़दूर डी.सी. कार्यालय पर एकत्र हुए। वहाँ माकपा से जुड़ा स्त्री संगठन अखिल भारतीय जनवादी महिला संघ भी 16 दिसम्बर को दिल्ली में हुई सामूहिक बलात्कार की घटना के ख़िलाफ़ प्रदर्शन कर रहा था। लिहाज़ा, दोनों प्रदर्शनों को एक प्रदर्शन में तब्दील कर दिया गया। मारुति सुज़ुकी के मज़दूर बड़ी संख्या में मौजूद थे और उनके साथ संघर्ष में खड़े तमाम मज़दूर संगठन भी वहाँ मौजूद थे। प्रदर्शन के संचालन की बागडोर माकपा के अनुषंगी संगठनों ने अपने हाथों में ले ली। अगले डेढ़-दो घण्टे तक जारी रहे प्रदर्शन में माकपा से जुड़ी ट्रेड यूनियनों, छात्र संगठनों, स्त्री संगठनों और उसकी केन्द्रीय ट्रेड यूनियन फेडरेशन सीटू के नेतागण मंच पर बारी-बारी से बोलते रहे। लेकिन मारुति सुज़ुकी मज़दूर आन्दोलन को मंच पर कोई विशेष स्थान नहीं मिला। अन्त में, एम.एस.डब्ल्यू.यू. की नेतृत्वकारी समिति के एक सदस्य को बोलने का मौका दिया गया। लेकिन मारुति सुज़ुकी मज़दूरों का ज्ञापन तक डी.सी. को नहीं दिया जा सका। सीटू के लोगों का दावा था कि वे अपने माँगपत्रक में मारुति सुज़ुकी मज़दूरों की माँगें शामिल कर रहे हैं! जाहिर है कि इस संयुक्त प्रदर्शन में मारुति सुज़ुकी मज़दूरों की ताक़त तो लगी, लेकिन उन्हें कुछ हासिल नहीं हुआ। हालाँकि, मारुति सुज़ुकी वर्कर्स यूनियन के साथियों के कारण ही यह प्रदर्शन सफल हुआ, लेकिन उन्हें इसका कोई लाभ नहीं मिला। बाद में, सीटू के एक नेता ने मारुति मज़दूरों को यह पाठ भी पढ़ाया कि संघर्ष लड़ने का एक तौर-तरीक़ा होता है और ऐसे ही तरीक़े से काम किया जाता है! इन नेता महोदय ने अन्य जुझारू मज़दूर संगठनों के बारे में अविश्वास पैदा करने की भी कोशिश की, जो कि मारुति मज़दूरों के आन्दोलन में शुरू से पूरी ताक़त के साथ मौजूद हैं। उनका कहना था कि 'ऐसे संगठन जिनके न आगे का कुछ पता है, न पीछे का, वे मज़दूरों को बीच मझधार में ले जाकर छोड़ देंगे, इसलिए तुम सब सीटू के झण्डे तले रहो, क्योंकि वह देश की सबसे बड़ी केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों में से एक है!' ऐसी बात वही व्यक्ति करता है जिसके राजनीति ग़द्दारी की राजनीति हो। लेकिन नेता महोदय ने मारुति के साथियों को यह नहीं बताया कि यह केन्द्रीय ट्रेड यूनियन अब मज़दूर संघर्षों की पीठ में छुरा भोंकने और मज़दूरों की ताक़त का इस्तेमाल अपने चुनावी फ़ायदे के लिए करने के लिए मशहूर हो गयी है। चाहे वह आई.ई.डी. नोएडा का मसला हो या फिर ग्राज़ियानो और एलाइड निप्पन का। हर जगह यही चीज़ सामने आयी है!

केन्द्रीय ट्रेड यूनियन संघों का चरित्र पूरे देश में मज़दूरों के सामने साफ़ हो चुका है। इसके बावजूद मज़दूर मजबूरी में उसके साथ हैं, क्योंकि और कोई विकल्प उनके सामने मौजूद नहीं है और साथ ही उनके दिमाग़ में यह भ्रम काम करता है कि अगर केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें उनके साथ नहीं होंगी तो कोई उनकी बात नहीं सुनेगा और उन्हें दमन का सामना करना पड़ेगा। लेकिन पिछले कुछ वर्षों का इतिहास बताता है कि उन कारख़ानों और औद्योगिक क्षेत्रों के मज़दूरों के आन्दोलन ही सफलता या आंशिक सफलता तक पहुँचे हैं जहाँ मज़दूरों ने अपने इस विभ्रम से छुटकारा पाया है और अपने संघर्ष को अपनी अलग क्रान्तिकारी ट्रेड यूनियनों के बैनर तले चलाया है। एम.एस.डब्ल्यू.यू. को भी सबसे ज़्यादा सफलता तभी मिली है जब उन्होंने केन्द्रीय ट्रेड यूनियन फ़ेडरेशनों से स्वतन्त्र अपनी योजना बनायी है। यह बात अलग है कि जब भी एम.एस.डब्ल्यू.यू. अपने हितों के अनुसार केन्द्रीय ट्रेड यूनियनों से स्वतन्त्र कोई योजना बनाती है, तो सीटू, एटक आदि जैसे केन्द्रीय ट्रेड यूनियन फ़ेडरेशन ब्लैकमेल करना और धमकियाँ देना शुरू कर देते हैं; वे कुछ विशिष्ट संगठनों के बारे में दुष्प्रचार शुरू कर देते हैं कि वे नक्सलवादी हैं, आतंकवादी हैं, वगैरह। लेकिन इन सबके बावजूद मारुति सुज़ुकी के मज़दूरों को यह बात समझनी चाहिए कि कौन उनके सही मित्र हैं, और कौन आस्तीन के साँप! इस आन्दोलन को जल्द से जल्द संशोधनवादियों से मिलने वाले एक नकली सुरक्षा-बोध से मुक्ति पानी होगी। इससे हमारे आन्दोलन को अभी तक केवल नुकसान ही हुआ है। मारुति मज़दूरों के सामने भी अब यह सवाल स्पष्ट रूप में खड़ा है।

फिलहाल, मारुति सुज़ुकी के मज़दूर अपनी यूनियन के नेतृत्व में 27 जनवरी के दिन रोहतक में भूपेन्द्र सिंह हुड्डा के आवास पर प्रदर्शन की तैयारियों में लगे हुए हैं। तमाम सहयोगी संगठन भी इस कार्रवाई में उनके साथ हैं और उनकी मदद कर रहे हैं। इस प्रदर्शन को मुख्य तौर पर सीटू समन्वित कर रहा है। बस डर है कि कहीं ऐसा न हो कि 1 जनवरी की ही तरह मारुति सुज़ुकी के मज़दूर अपनी पूरी ताक़त झोंककर वहाँ पहुँचें और वहाँ उनका मुद्दा, उनका नेतृत्व कहीं किनारों पर धकेल दिया जाये और उनकी उपस्थिति और ताक़त का इस्तेमाल कोई और अपने चुनावी फ़ायदों के लिए कर ले जाये। इसलिए मारुति सुज़ुकी मज़दूर आन्दोलन में शामिल सभी साथियों को यह बात स्पष्टता के साथ अपने दिमाग़ में बिठा लेनी होगी कि अगर फिर वही होना है जो 1 जनवरी को हुआ था तो उन्हें कुछ भी हासिल होने वाला नहीं है।

मारुति सुज़ुकी के मज़दूरों के आन्दोलन को आगे ले जाने का रास्ता स्वतन्त्र तरीके से कार्यक्रम बनाते हुए आगे बढ़ने का रास्ता है। संशोधनवादी, संसदीय वामपंथी पार्टियों से जुड़ी ट्रेड यूनियनों के चरित्र को जब तक हम नहीं समझेंगे तब तक हम बार-बार धोखा खाते रहेंगे और उसके बावजूद हमें कुछ भी हासिल नहीं होगा। यह इस समय आन्दोलन की सबसे बड़ी चुनौती है, जिसका सामना हमें मिलकर करना है। दूसरी सबसे बड़ी चुनौती है भावी संघर्ष की एक सही, स्वतन्त्र रणनीति बनाना। इसके लिए एम.एस.डब्ल्यू.यू. को विचार करना चाहिए, सभी सहयोगी संगठनों की राय सुननी चाहिए और फिर अपनी जनरल बॉडी मीटिंग में सारे प्रस्तावों पर जनवादी तरीके से चर्चा करके अन्तिम फैसला लेना चाहिए। अगर एम.एस.डब्ल्यू.यू. के अन्दर ट्रेड यूनियन जनवाद और पारदर्शिता का शुरू से पालन नहीं किया जायेगा और आगे की रणनीति सम्बन्धी सभी फैसले कुछ ही साथियों के बीच हो जायेंगे, तो आन्दोलन के आगे बढ़ने पर तो कुछ नहीं पता चलेगा, लेकिन उसके पीछे जाने या असफलता की ओर बढ़ने पर भयंकर स्थिति पैदा होगी और आरोपों-प्रत्यारोपों के दौर शुरू हो जायेंगे। इसलिए सबसे अच्छा तरीका यह होगा कि भविष्य की रणनीति के बारे में यूनियन का नेतृत्वकारी निकाय सभी सहयोगी संगठनों की राय को सुने और उसके बाद उसे जनरल बॉडी में चर्चा के लिए खुला कर दे। इस चर्चा के नतीजे के तौर पर बहुसंख्या की जो राय बने, उस पर यूनियन को अमल करना चाहिए। अगर अभी से इस पद्धति का पालन नहीं होता तो आगे संकटपूर्ण स्थिति पैदा हो सकती है।

अन्त में यही कहा जा सकता है कि मारुति सुज़ुकी मज़दूर निश्चित तौर पर हार मानने को तैयार नहीं हैं और अपने गिरफ़्तार साथियों को रिहा कराने और बर्ख़ास्त साथियों को बहाल कराने के लिए कटिबद्ध हैं। लेकिन इसके साथ हमें ज़रूरत है कि हम एक सही अल्पकालिक और दीर्घकालिक योजना बनायें, जिसके बारे में ऊपर लिखा गया है; हम संशोधनवादियों के विभ्रम से मुक्त होकर स्वतन्त्र तौर पर अपने संघर्ष की योजना तैयार करें; और साथ ही, अपने भीतर पहली ही मंज़िल से एक पारदर्शी और सच्चे ट्रेड यूनियन जनवाद का पालन करें। ये तीन चीज़ें हैं जिनका हमारे विचार में संघर्ष की सफलता में केन्द्रीय योगदान होगा। इसके अलावा, अन्य कोई रास्ता नहीं है।

पेरिस कम्यून : पहले मज़दूर राज की सचित्र कथा (आठवीं किश्त)

आज भारत ही नहीं, पूरी दुनिया के मज़दूर पूँजी की लुटेरी ताक़त के तेज़ होते हमलों का सामना कर रहे हैं, और मज़दूर आन्दोलन बिखराव, ठहराव और हताशा का शिकार है। ऐसे में इतिहास के पन्ने पलटकर मज़दूर वर्ग के गौरवशाली संघर्षों से सीखने और उनसे प्रेरणा लेने की अहमियत बहुत बढ़ जाती है। आज से 141 वर्ष पहले, 18 मार्च 1871 को फ्रांस की राजधानी पेरिस में पहली बार मज़दूरों ने अपनी हुकूमत क़ायम की। इसे पेरिस कम्यून कहा गया। उन्होंने शोषकों की फैलायी इस सोच को ध्वस्त कर दिया कि मज़दूर राज-काज नहीं चला सकते। पेरिस के जाँबाज़ मज़दूरों ने न सिर्फ़ पूँजीवादी हुकूमत की चलती चक्की को उलटकर तोड़ डाला, बल्कि 72 दिनों के शासन के दौरान आने वाले दिनों का एक छोटा-सा मॉडल भी दुनिया के सामने पेश कर दिया कि समाजवादी समाज में भेदभाव, ग़ैर-बराबरी और शोषण को किस तरह ख़त्म किया जायेगा। आगे चलकर 1917 की रूसी मज़दूर क्रान्ति ने इसी कड़ी को आगे बढ़ाया।

मज़दूर वर्ग के इस साहसिक कारनामे से फ्रांस ही नहीं, सारी दुनिया के पूँजीपतियों के कलेजे काँप उठे। उन्होंने मज़दूरों के इस पहले राज्य का गला घोंट देने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा दिया और आख़िरकार मज़दूरों के कम्यून को उन्होंने ख़ून की नदियों में डुबो दिया। लेकिन कम्यून के सिद्धान्त अमर हो गये। पेरिस कम्यून की हार से भी दुनिया के मज़दूर वर्ग ने बेशक़ीमती सबक़ सीखे। पेरिस के मज़दूरों की कुर्बानी मज़दूर वर्ग को याद दिलाती रहती है कि पूँजीवाद को मटियामेट किये बिना उसकी मुक्ति नहीं हो सकती। 'मज़दूर बिगुल' के मार्च 2012 अंक से हम दुनिया के पहले मज़दूर राज की सचित्र कथा की शुरुआत की है, जो अगले कई अंकों में जारी रहेगी।

इस शृंखला की शुरुआती कुछ किश्तों में हमने पेरिस कम्यून की पृष्ठभूमि के तौर पर जाना कि पूँजी की सत्ता के ख़िलाफ़ मज़दूरों ने किस तरह लड़ना शुरू किया और किस तरह चार्टिस्ट आन्दोलन और 1848 की क्रान्तियों से गुज़रते हुए मज़दूर वर्ग की चेतना और संगठनबद्धता आगे बढ़ती गयी। हमने मज़दूरों की मुक्ति की वैज्ञानिक विचारधारा के विकास और पहले अन्तरराष्ट्रीय मज़दूर संगठन के बारे में जाना। पिछले अंकों में हमने जाना कि कम्यून की स्थापना कैसे हुई और उसकी रक्षा के लिए मेहनतकश जनता किस प्रकार बहादुरी के साथ लड़ी। हमने यह भी देखा कि कम्यून ने सच्चे जनवाद के उसूलों को इतिहास में पहली बार अमल में कैसे लागू किया और यह दिखाया कि "जनता की सत्ता" वास्तव में क्या होती है। अब हम उन ग़लतियों पर नज़र डाल रहे हैं जिनकी वजह से कम्यून की पराजय हुई। इन ग़लतियों को ठीक से समझना और पूँजीवाद के ख़िलाफ़ निर्णायक जंग में जीत के लिए उनसे सबक़ निकालना मज़दूर वर्ग के लिए बहुत ज़रूरी है। – सम्पादक

कम्यून ने सिखाया – पूँजीवाद के विरुद्ध लड़ाई में उदारता, शिथिलता या हिचकिचाहट का नतीजा होता है रक्तरंजित हार!

पेरिस के वीर कम्युनार्ड बेहद बहादुरी के साथ लड़ रहे थे लेकिन आख़िरकार उन्हें पूँजीपतियों की पूरी संगठित शक्ति के आगे हार का सामना करना पड़ा। फ्रांस ही नहीं, पूरे यूरोप के पूँजीपति मज़दूरों के इस पहले राज्य को धूल में मिला देने के लिए एकजुट और आमादा थे। कम्युनार्डों के ज़बर्दस्त संघर्ष से वे भयाक्रान्त थे लेकिन धूर्त शिकारियों की तरह वे मज़दूरों की ओर से होने वाली किसी भी ग़लती की ताक में लगे हुए थे और किसी भी ग़लती का फ़ायदा उठाने का मौक़ा नहीं चूकते थे। और अपनी बहादुरी के बावजूद कम्यून के रक्षकों ने उन्हें अपनी ताक़त बटोरने और हमला करने के कई मौक़े दे दिये। इनको ध्यान से समझने और इनसे सीखने की ज़रूरत है।

चित्र में: दुश्मन से छीनी एक तोप के साथ पेरिस के मज़दूरों का रक्षक दल

1. कम्यून की भारी तबाही का पहला कारण यह था कि कम्यून की स्थापना के पहले और बाद दोनों ही दौरों में एक अनुशासित, सुगठित क्रान्तिकारी नेतृत्व का अभाव था। मज़दूर वर्ग की ऐसी कोई भी एकताबद्ध और विचारधारात्मक रूप से मज़बूत राजनीतिक पार्टी नहीं थी जो जनता के इस प्रारम्भिक उभार की अगुवाई कर सके। नेतृत्व के लिए कई ग्रुपों में प्रतिस्पर्धा हुई – इनमें प्रूधोंवादी, ब्लांकीवादी और इण्टरनेशनलवादी सबसे अधिक लोगों का प्रतिनिधित्व करते थे। इससे कम्यून में लगातार भ्रम और अनिर्णय की स्थिति बनी रही, योजना की कमी और एक दूरगामी कार्यक्रम का अभाव बना रहा। रणकौशल की पूरी उपेक्षा और तेज़ी के साथ विकसित हो रही क्रान्तिकारी परिस्थिति में टुकड़े-टुकड़े, रोज़मर्रा के ढंग से काम करना इन नेताओं का जैसे तरीक़ा बन चुका था।

2. उभार के शुरुआती दिनों में जो सीमित प्राधिकार था उसे भी बाद में छोड़ दिया गया। जैसा कि मार्क्स ने अपने मित्र कुगेलमान को 12 अप्रैल, 1871 को लिखे प्रसिद्ध पत्र में कहा था, "(नेशलन गार्ड की) केन्द्रीय समिति ने अपनी शक्तियों को बहुत जल्दी ही छोड़ दिया और उन्हें कम्यून को हस्तान्तरित कर दिया।"

मार्क्स, जो केन्द्रीयतावाद के हिमायती थे, इस बात को समझ चुके थे कि पेरिस के मज़दूर सेना को अपने कमान में रखने वाली एक केन्द्रीकृत क्रान्तिकारी प्राधिकार (अथॉरिटी) के नेतृत्व में ही थियेर सरकार के ख़िलाफ़ एक सफल राजनीतिक संघर्ष संचालित कर सकते थे। नेशनल गार्ड की केन्द्रीय समिति ऐसा ही प्राधिकार था, परन्तु अपनी शक्तियों की तिलांजलि देकर और अपना प्राधिकार ढीले-ढाले ढंग से गठित कम्यून को हस्तान्तरित कर इसने अपनी सशस्त्र सेना की क्रान्तिकारी ऊर्जा को बिखरा दिया।

3. इसके बावजूद, कम्यून की कमज़ोरियों का विश्लेषण करने के साथ ही, मार्क्स ने कम्युनार्डों के क्रान्तिकारी जोश के प्रति ज़बर्दस्त उत्साह प्रदर्शित किया। ऊपर हमने कुगेलमान को लिखे जिस पत्र का उल्लेख किया है, वह कम्यून की घोषणा के तीन सप्ताह बाद लिखा गया था। पत्र में मार्क्स ने उत्कट उत्साह के साथ लिखा था, "कैसी निपुणता! इन पेरिसवासियों ने कैसी ऐतिहासिक पहलक़दमी, आत्मोत्सर्ग का कैसा सामर्थ्य दिखाया है। छह महीने की भूख और तबाही के बाद, जो विदेशी दुश्मन से ज़्यादा भितरघात के चलते थी, वे प्रशियाई संगीनों के साये में इस तरह उठ खड़े हुए मानो फ्रांस और जर्मनी के बीच कोई युद्ध छिड़ा ही न हो, जैसे कि पेरिस के दहलीज़ पर दुश्मन हो ही नहीं। इतिहास में ऐसी बहादुरी की कोई मिसाल नहीं मिलती।"

और इसके तुरन्त बाद उन्होंने उस ग़लती की आलोचना रखी जो कम्यून की सबसे भारी ग़लतियों में से एक थी, "यदि उनकी पराजय होती है तो यह उनकी 'दरियादिली' के कारण होगी। जैसे ही विनी और नेशनल गार्ड का प्रतिक्रियावादी हिस्सा पेरिस से निकल भागा वैसे ही उन्हें वर्साय की तरफ तत्काल कूच कर देना चाहिए था। 'ईमानदारी' के चलते हाथ आये मौके को गँवा दिया गया। वे गृहयुद्ध शुरू नहीं करना चाहते थे – मानो कि नृशंस थियेर ने पेरिस को निश्शस्त्र करने की अपनी कोशिशों से इसकी शुरुआत पहले ही नहीं कर दी थी।"

मज़दूरों के पेरिस की रक्षा में मुस्तैद बहादुर स्त्री-पुरुष

4. क्रान्तिकारी रणनीतिकार, मार्क्स, इस बात को समझ गये थे कि क्रान्तिकारी पेरिस का दुश्मन जब भाग रहा था तो नेशनल गार्ड का यह काम बनता था वह उसे अपनी शक्ति को फिर से संगठित करने और लौटकर पेरिस के मज़दूरों पर धावा बोलने का मौका देने की जगह थियेर की पराजित सेना का पीछा करे और उसका ख़ात्मा कर दे। मगर कम्यून इस बात को नहीं समझ सका। कम्यून के नेताओं की 'दरियादिली' ने, जिसकी मार्क्स ने इतनी आलोचना की है, थियेर सरकार और उसके प्रतिक्रियावादी पिट्ठुओं को शान्तिपूर्वक वर्साय चले जाने का, वहाँ अपनी ताकत को पुनः संगठित करने और कम्यून के ख़िलाफ़ षड़यन्त्र रचने का मौका दिया। इसी उदारता के चलते उन्होंने उन प्रमुख बुर्जुआ नेताओं को बन्धक नहीं बनाया जो शहर में बने रहे और जिन्होंने भेदियों के रूप में काम करने तथा वहाँ प्रतिक्रान्तिकारी गतिविधियों के केन्द्र बनाने के लिए इस मौक़े का फ़ायदा उठाया। यदि कम्यून ने उन फ़ौजी दस्तों से, जो प्रतिक्रियावादी सरकार के प्रभाव में थे, हथियार ले लिये होते और उन्हें शहर में रोक लिया होता, तो उसके एक बड़े हिस्से को वह अपने पक्ष में कर सकता था और दूसरों को तटस्थ बना सकता था। इसके बजाय उन्हें आज़ादी के साथ वर्साय जाने और वहाँ प्रतिक्रियावादी सैन्यवादियों के निरन्तर संरक्षण में रहने का मौक़ा दिया गया।

वर्साय की सत्ता ने गिरफ़्तार किये गये कम्युनार्डों के साथ भी बर्बरता दिखाने में कोई कमी नहीं छोड़ी। ऊपर एक जेल में पकड़े गये कम्युनार्ड स्त्री-पुरुषों को गोली मारी जा रही है।

पेरिस के बाहरी किनारों पर लड़ाई के मोर्चे पर तैनात नेशनल गार्ड और कम्युनार्ड

बुर्जुआ सेनाओं द्वारा पेरिस में मचायी गयी तबाही का मंज़र

5. पेरिस कम्यून मज़दूर वर्ग द्वारा सत्ता के लिए एक संघर्ष था। संघर्ष के विकसित होने के साथ पेरिस के मज़दूरों ने जिस बदलाव को देखा था वह सिर्फ प्रशासन में बदलाव भर नहीं था। उनके नेताओं में सर्वाधिक स्पष्ट समझ वाले लोग, इण्टरनेशनल के सिद्धान्तों पर चलने वाले लोग, यह जानते थे कि यह संघर्ष सामाजिक क्रान्ति का रूप ग्रहण कर रहा है, हालाँकि वे और अन्य लोग भी इस संघर्ष के दिशा-निर्धारण के लिए आवश्यक रणकौशल बनाने में विफल रहे। कुगेलमान को लिखे दूसरे पत्र (17 अप्रैल) में मार्क्स ने निम्नलिखित शब्दों में अपनी व्याख्या रखी, "पेरिस कम्यून के कारण ही यह मुमकिन हुआ कि पूँजीपति वर्ग और उसकी राज्य मशीनरी के विरुद्ध संघर्ष एक नये चरण में प्रवेश कर गया। इसका जो भी अन्त होगा, अन्तरराष्ट्रीय महत्व की एक नयी घटना सम्पन्न हो चुकी है।"

मार्क्स के इस कथन के बारे में, कि पेरिस के मज़दूरों को संघर्ष में उतरना पड़ेगा, लेनिन ने लिखा, "मार्क्स इस बात को समझ सकते थे कि इतिहास में कुछ क्षण ऐसे भी आते हैं जब, जीत की उम्मीद न होते हुए भी, जनता की भावी शिक्षा और अगले संघर्ष के अभ्यास के लिए जनता का संघर्ष आवश्यक हो जाता है।"

कम्यून को कुचले जाने के बाद हज़ारों की तादाद में मेहनतकशों को गिरफ़्तार किया गया। बहुतों को मौत की सज़ा दी गयी और हज़ारों को देश निकाले की।

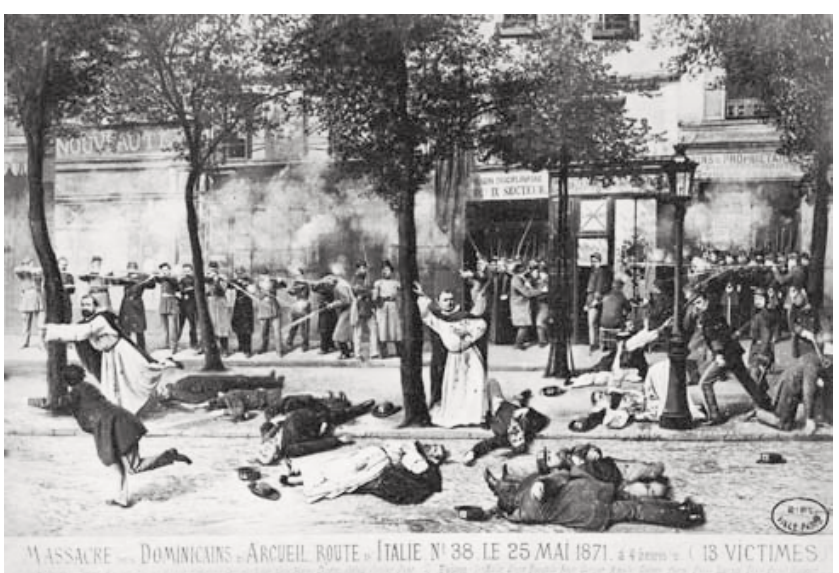

पेरिस में चप्पे-चप्पे के लिए घमासान लड़ाई हुई। आख़िरी दम तक कम्युनार्डों ने बहादुरी से मुकाबला किया। शहर की एक सड़क पर लड़ाई का दृश्य।

6. चर्च को राज्य से अलग करने, चर्च की सम्पत्ति के राज्य द्वारा अधिग्रहण, उजड़ गयी फैक्टरियों को अपने हाथ में लेने, मज़दूरों पर जुर्माना लगाने सम्बन्धी प्रावधानों को ख़त्म, नानबाई की दुकानों में रात के समय काम की पाबन्दी लगाने जैसी कम्यून द्वारा जारी आज्ञप्तियाँ अत्यन्त सामाजिक महत्व के काम थे। ये मज़दूरों की ऐसी सरकार के काम थे जो मज़दूर वर्ग के हित में क़ानून बना रही थी।

परन्त कम्यून ने सभी फ़ैक्टरियों को अपने अधिकार में नहीं लिया। इसने बैंक ऑफ़ फ्रांस को अपने क़ब्ज़े में नहीं लिया। बल्कि वह अपने क्रान्तिकारी मक़सद की पूर्ति के लिए वहाँ कर्ज़ माँगने गया। बैंक को कब्ज़े में नहीं लेना कम्यून की एक और बड़ी ग़लती थी। इस धन का इस्तेमाल कम्यून को कुचलने में किया गया।

वर्साय की सेना ने पेरिस पर कब्ज़ा करने के बाद क्रूरतम कत्लेआम मचाया। सड़कों पर लोगों को उनके हाथों के घट्ठे देखकर पहचाना जाता था कि वे मज़दूर हैं और वहीं गोली मार दी जाती थी।
चित्र में: गोली से उड़ाये गये कम्युनार्डों के ताबूत। ये दृश्य हमारी स्मृतियों से कभी ओझल नहीं होने चाहिए...

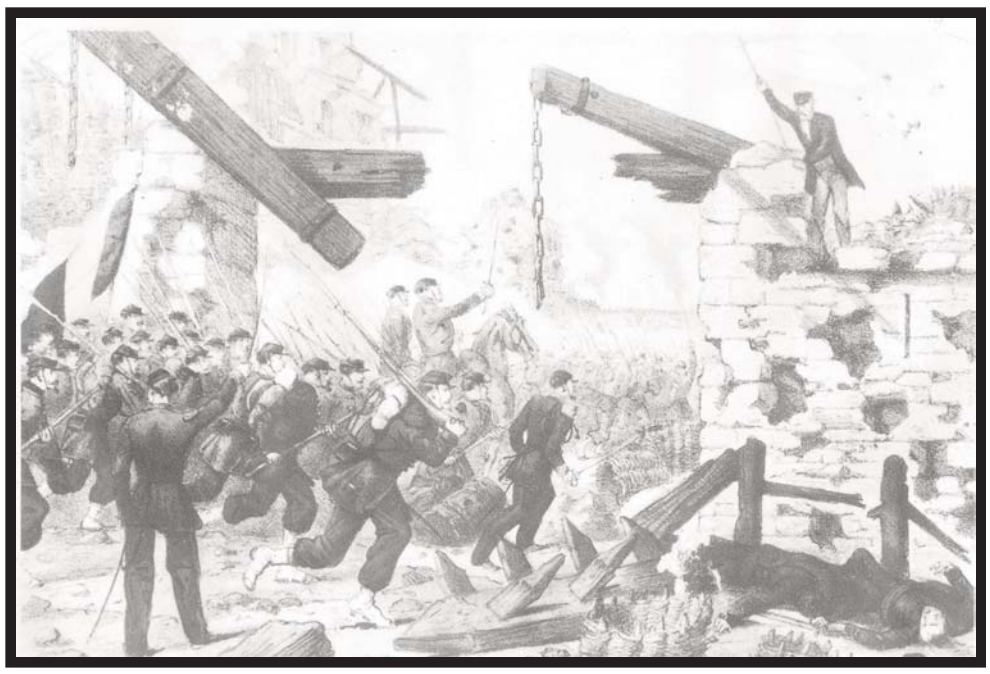

7. कम्यून ने हालाँकि राज्य की सत्ता को अपने क़ब्ज़े में ले लिया था, पर उसने राज्य के पुराने ढांचे के भीतर ही राजकाज चलाने की कोशिश की। मार्क्स ने एक अप्रैल के अपने पत्र में इसके ख़िलाफ़ चेतावनी देते हुए लिखा, "नौकरशाहाना राजनीतिक उपकरण को चकनाचूर कर देना" सर्वहारा क्रान्ति की एक पूर्वशर्त है। कम्यून के मूल्यांकन सम्बन्धी अपने क्लासिक अध्ययन फ्रांस में गृहयुद्ध में, जिसे कम्यून की पराजय के दो दिन बाद पहले इण्टरनेशनल की आम परिषद की बैठक में सम्बोधन के रूप में प्रस्तुत किया गया था, मार्क्स ने इस विषय पर अपना ध्यान केन्द्रित किया और यह सैद्धान्तिक निष्कर्ष प्रस्तुत किया, "मज़दूर वर्ग बनी-बनायी राज्य मशीनरी को जस का तस हाथ में नहीं ले सकता और उसे अपना उद्देश्य पूरा करने के लिए इस्तेमाल नहीं कर सकता।"

8. 1891 में कम्यून की बीसवीं बरसी पर एंगेल्स ने फ्रांस में गृहयुद्ध के नये जर्मन संस्करण की भूमिका लिखी। बैंक ऑफ़ फ्रांस को अपने अधिकार में लेकर उसका अपने हित में इस्तेमाल न कर पाने के लिए कम्यून की आलोचना करते हुए एंगेल्स यह रेखांकित करते हैं कि कम्यून ने सरकार की पुरानी मशीनरी को नष्ट करने के बजाय उसीका इस्तेमाल करने की कोशिश की। मार्क्स ने अपने 'सम्बोधन' में जिस बात की चर्चा की थी, एंगेल्स ने उसी पर ज़ोर देते हुए कहा कि "कम्यून को यह समझना चाहिए था कि सत्ता पर अधिकार करने के बाद मज़दूर राज्यसत्ता के पुराने ढाँचे से, उसी मशीनरी से, जिसका इस्तेमाल पहले उनके शोषण के लिए होता था, शासन नहीं चला सकते।" एंगेल्स इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि "वास्तव में, राजशाही की तरह ही किसी जनवादी गणतन्त्र में भी राज्य एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग के उत्पीड़न के उपकरण के सिवाय और कुछ नहीं होता है।"

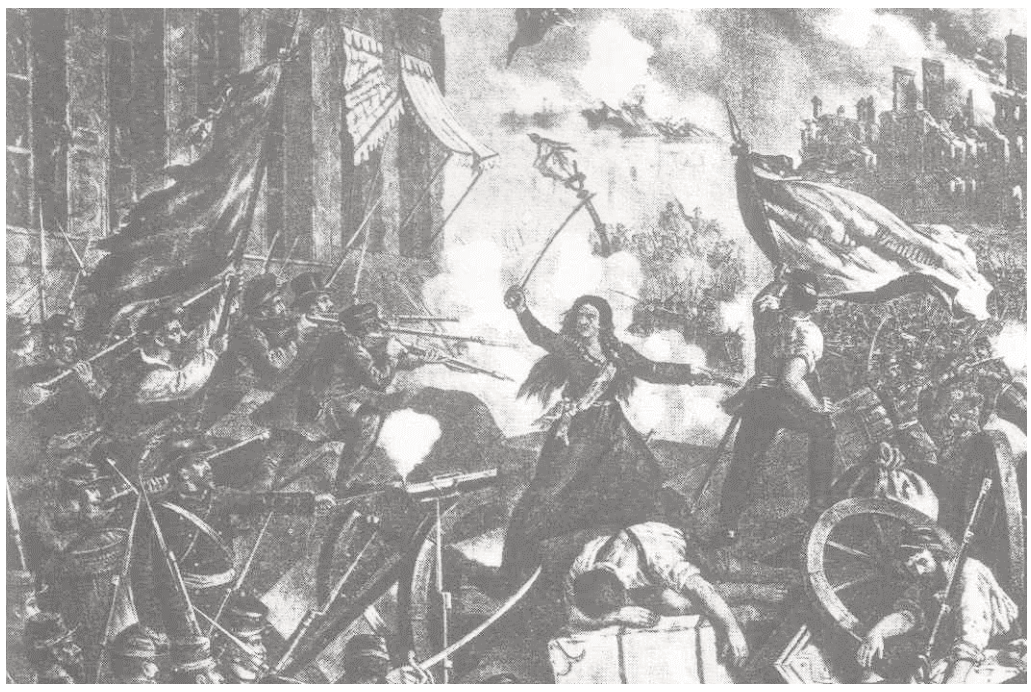

ऊपर और दायें के चित्रों में: पेरिस में अपनी आख़िरी जंग लड़ते कम्युनार्ड। बायें: कम्यून की पराजय के बाद मज़दूरों से छीने गये हथियारों को नष्ट करते हुए वर्साय के सैनिक

कैसा है यह लोकतन्त्र और यह संविधान किनकी सेवा करता है? *(पन्द्रहवी किश्त)*

● आनन्द सिंह

इस धारावाहिक लेख की चौथी किस्त 'नयी समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक बिगुल' अख़बार के अन्तिम अंक (जून, 2010) में प्रकाशित हुई थी। उसी अख़बार के उत्तराधिकारी के रूप में नवम्बर 2010 में जब 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन शुरू हुआ तो प्रवेशांक में कुछ अपरिहार्य कारणों से इस लेख की अगली किस्त नहीं दी जा सकी। दिसम्बर 2010 अंक से पुनः इस धारावाहिक लेख का प्रकाशन शुरू किया गया है। इसकी पहली 12 किश्तों के लेखक आलोक रंजन हैं। – सम्पादक

मूलभूत अधिकार: दावे और हक़ीक़त

पिछले अंक में हमने भारतीय संविधान में मौजूद समता के अधिकार और स्वतन्त्रता सम्बन्धी अधिकारों की विस्तृत चर्चा की। इस अंक में हम संविधान के भाग तीन में उल्लिखित अन्य मूलभूत अधिकारों यानी शोषण के विरुद्ध अधिकार, धर्म की स्वतन्त्रता सम्बन्धी अधिकार, अल्पसंख्यकों के अधिकार और संवैधानिक उपचारों के अधिकार की चर्चा करेंगे और यह जानने की कोशिश करेंगे कि क्या ये अधिकार वाक़ई अपने दावों पर खरे उतरते हैं।

शोषण के विरुद्ध अधिकार

संविधान के तीसरे भाग में दो अनुच्छेद (23 और 24) 'शोषण के विरुद्ध अधिकार' शीर्षक के तहत रखे गये हैं। परन्तु इस शीर्षक से यह गलतफ़हमी नहीं होनी चाहिए कि इसके तहत सामाजिक उत्पादन में सबसे महत्वपूर्ण योगदान करने वाले मज़दूर वर्ग के शोषण के विरुद्ध कोई बुनियादी प्रावधान है। यदि संविधान निर्माता वाक़ई शोषण का ख़ात्मा करने के लिए दृढ़संकल्प होते तो वे इस शीर्षक के तहत सबसे पहला प्रावधान यह रखते कि मुनाफ़ा कमाने की स्वार्थी हसरत के लिए किसी नागरिक के श्रम को नहीं निचोड़ा जा सकता। परन्तु यदि वे ऐसा करते तो भारत में पूँजीवादी आर्थिक व्यवस्था की नींव डाली ही नहीं जा सकती थी क्योंकि भारतीय संविधान बनने के लगभग एक शताब्दी पहले ही मार्क्स ने वैज्ञानिक तर्कों द्वारा यह निर्विवाद रूप से सिद्ध कर दिया था कि श्रम का शोषण किये बग़ैर पूँजीवादी व्यवस्था की अट्टालिका का निर्माण हो ही नहीं सकता। बहरहाल, संविधान के निर्माण की प्रक्रिया की चर्चा के दौरान हम यह पहले ही देख चुके हैं कि संविधान निर्माता वास्तव में भारत के नवजात बुर्जुआ वर्ग के हितों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। इसलिए उनसे यह उम्मीद करना कि वे संविधान में कोई ऐसा कोई बुनियादी प्रावधान डालते जो बुर्जुआ वर्ग के हितों के ख़िलाफ़ जाता, एक नादानी होगी।

एक उदारवादी पूँजीवादी व्यवस्था भी मज़दूर वर्ग के लिए कुछ अधिकारों का प्रावधान करती है, मसलन न्यूनतम मज़दूरी का अधिकार, समान काम के लिए समान वेतन का अधिकार, काम की मानवोचित परिस्थितियों का अधिकार, काम के सीमित घण्टों का अधिकार इत्यादि। परन्तु भारतीय संविधान में 'शोषण के विरुद्ध अधिकार' शीर्षक के तहत इनमें से किसी भी अधिकार का ज़िक्र तक नहीं है। यह अपने आप में भारतीय संविधान और उस पर आधारित भारतीय लोकतन्त्र के घोर मज़दूर विरोधी चरित्र को दिखाता है।

अब आइये देखते हैं कि 'शोषण के विरुद्ध अधिकार' शीर्षक के तहत किन अधिकारों के प्रावधान संविधान के तीसरे भाग में मौजूद हैं। इस शीर्षक के तहत अनुच्छेद 23 में मानव के दुर्व्यापार (भ्नउंद ज्तांपिबापदह) और बेगार जैसे बलात् श्रम पर पाबन्दी का प्रावधान है। संविधान लागू होने के छह दशकों का अनुभव यह बताता है कि भारतीय राज्य इस अधिकार को भी लागू करने में नितान्त अक्षम सिद्ध हुआ है। पिछले छह दशकों मे ग़रीबी और बेरोज़गारी की मार झेलते लोगों का सापेक्षिक पिछड़े इलाक़ों से विकसित इलाक़ों की ओर न सिर्फ़ स्वेच्छा से पलायन होता आया है, बल्कि ग़ैर क़ानूनी रूप से मानव दुर्व्यापार का गोरखधन्धा कम होने की बजाय लगातार बढ़ता ही गया है। इससे भी भयावह सच्चाई यह है कि मानव दुर्व्यापार के इस गोरखधन्धे के शिकार ज़्यादातर मामलों में महिलायें और बच्चे होते हैं जिनमें से अधिकांश वेश्यावृत्ति के दुष्चक्र में फँस जाते हैं। देश के हर शहर में यह गोरखधन्धा पिछले छह दशकों में संविधान में इसको रोकने के प्रावधान की खिल्ली उड़ाता हुआ दिन दूनी रात चौगुनी रफ़्तार से बढ़ता गया है।

संविधान के अनुच्छेद 24 में चौदह वर्ष से कम आयु के किसी बालक को किसी कारख़ाने, खान या अन्य परिसंकटमय काम के लिए नियोजित करने की पाबन्दी का प्रावधान है। यह पूरा प्रावधान खामियों से भरा है इसकी मिसाल इसी से मिल जाती है कि संविधान लागू होने के छह दशक बाद भी भारत दुनिया भर में बाल मज़दूरी के मामले में अग्रणी देशों की श्रेणी में शामिल है। किसी भी लोकतान्त्रिक देश में बाल मज़दूरी के सभी रूपों पर पाबन्दी होनी चाहिए। परन्तु भारतीय संविधान में यह सिर्फ़ कारख़ानों, खानों और परिसंकटमय कामों में ही वर्जित है। यानि ढाबों, होटलों, दुकानों और घरों में बाल मज़दूरी के सिलसिले में संविधान में कोई भी पाबन्दी नहीं है। इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 24 में बाल मज़दूरी सम्बन्धी प्रावधान 14 वर्ष तक के ही बच्चों पर लागू हैं, अर्थात् 14 वर्ष और एक दिन के बच्चे के लिए बाल मज़दूरी पर पाबन्दी सम्बन्धी कोई भी प्रावधान संविधान में मौजूद नहीं है। संविधान में मौजूद प्रावधान की उपरोक्त सीमाओं की वजह से कालीन उद्योग, होटल और रेस्त्राँ व ढाबों में ही नहीं बल्कि ख़दानों में एवं पटाखा उद्योग और माचिस उद्योग जैसे ख़तरनाक उद्योगों में बाल मज़दूरी धड़ल्ले से जारी है। चूँकि बाल मज़दूरी से पूँजीपति वर्ग का मुनाफ़ा कमाने का हित सधता है इसलिए पिछले छह दशकों में इस मानवता पर कलंक इस विभीषिका को समाप्त करने के लिए कोई कारगर क़दम नहीं उठाये गये हैं। ऐसे में संविधान में मौजूद शोषण के विरुद्ध अधिकार औपचारिक अधिकारों की सीमा से एक क़दम भी आगे बढ़ते नहीं दिखते।

धर्म की स्वतन्त्रता और अल्पसंख्यकों के अधिकार

संविधान के अनुच्छेद 25-30 में धर्म की स्वतन्त्रता और अल्पसंख्यकों की संस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी अधिकारों के प्रावधान हैं। संविधान की प्रस्तावना की चर्चा के दौरान हमने देखा था कि किस प्रकार भारतीय राजनीति में धर्मनिरपेक्षता धार्मिक संस्थाओं-अनुष्ठानों का राज्य से पूर्ण पृथक्करण और धार्मिक विश्वासों को निजी जीवन के दायरे तक सीमित कर देने वाली क्लासिकी बुर्जुआ जनवादी अवधारणा न होकर "सर्व-धर्म समभाव" के अर्थों में प्रचलित हुई। इसका परिणाम यह हुआ कि सार्वजनिक जीवन में धार्मिक कुरीतियों और अन्धविश्वासों तथा सामन्ती और पितृसत्तात्मक मूल्यों के ख़िलाफ़ संघर्ष करने की बजाय धर्म की स्वतन्त्रता के नाम पर उन्हें बरक़रार रहने दिया गया। यही नहीं पिछले छह दशकों में धर्म और जाति पर आधारित वोट बैंक की राजनीति भी ख़ूब फली-फूली। विभिन्न राजनीतिक पार्टियाँ लोगों की धार्मिक और जातीय पहचान बरक़रार रखने का खुले आम आह्वान करती हैं। नतीजतन समताविरोधी, नारीविरोधी विचारों का परित्याग करने और समता पर आधारित आधुनिक मूल्यों की स्थापना करने की बजाय दकियानूसी विचार नये सिरे से और पहले से कहीं ज़्यादा गहराई से लोगों के दिलो-दिमाग़ में पैठ बना रहे हैं।

धर्म निरपेक्षता की प्रबोधनकालीन अवधारणा सार्वजनिक जीवन में वैज्ञानिक और तर्कसंगत विचारों को बढ़ावा देने की पक्षधर थी। परन्तु धर्मनिरपेक्षता की भारतीय अवधारणा यानी "सर्वधर्म समभाव" इसका ठीक उल्टा कर रही है। विज्ञान ने अपनी सतत् विकासयात्रा के दौरान ब्रह्माण्ड, प्रकृति और मानव समाज के बारे में नित नये क्षितिज उद्घाटित किये हैं जिनकी समझ स्थापित करके तमाम सामाजिक समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। परन्तु भारत में हो ये रहा है कि विज्ञान का दैनिक जीवन के हर क्षेत्र में इस्तेमाल होते हुए भी विचारों के धरातल पर अवैज्ञानिक और अतार्किक विचारों का घटाटोप छाया हुआ है। इसकी एक मिसाल इसी से मिल जाती है कि भारत में सैकड़ों टी वी चैनल हैं जिनमें से धर्म पर आधारित चैनलों की संख्या दर्ज़नों में है, परन्तु विज्ञान पर आधारित एक भी नहीं है। इन धार्मिक चैनलों पर प्रवचन सुनाने वाले किसिम-किसिम के बाबा और कुछ नहीं करते बल्कि पुरातनपन्थी, दकियानूसी और घोर अवैज्ञानिक जीवन दृष्टिकोण का प्रचार-प्रसार करते हैं और धर्म की स्वतन्त्रता के नाम पर अपना धन्धा चलाते हैं जिससे लोगों में सामाजिक बदलाव की वैज्ञानिक चेतना कुन्द होती है।

1990 के दशक से हिन्दुत्ववादी फ़ासीवादी राजनीति के उभार के बाद से अल्पसंख्यकों में असुरक्षा की भावना पहले से कहीं ज़्यादा बढ़ गयी। भय और आतंक के साम्प्रदायिक माहौल में संविधान में उल्लिखित धर्म की स्वतन्त्रता का अधिकार ज़ाहिरा तौर पर एक बेहद सीमित मायने रखता है। अल्पसंख्यकों और निम्न जातियों के हितों के प्रतिनिधित्व करने का दावा करने वाले संगठन और राजनीतिक पार्टियाँ भी अल्पसंख्यकों और निम्न जातियों के लोगों में प्रबोधनकारी और वैज्ञानिक विचारों की पैठ बनाने की बजाय उनमें पुरातनपन्थी और अतार्किक विचारों का ही प्रचार-प्रसार करते हैं। वे एक वैकल्पिक समतामूलक सामाजिक ढाँचे के निर्माण के लिए संघर्ष करने के लिए प्रेरित करने की बजाय उनमें असुरक्षा की भावना भरकर उन्हें मज़हबी और जातीय पहचान से चिपके रहने की सलाह देते हैं। आरक्षण की राजनीति इसी का एक उदाहरण है जो निम्न जातियों और अल्पसंख्यकों को मौजूदा व्यवस्था को आमूलचूल ढंग से बदलकर नयी समतामूलक धर्मनिरपेक्ष व्यवस्था के निर्माण की बजाय इसी व्यवस्था में उच्च जातीय हिन्दू शासक वर्ग से ख़ैरात के कुछ टुकड़े माँगकर संतुष्ट हो जाने की सलाह देती है।

चूँकि भारत में उत्पादन के साधनों का मालिकाना हक़ जिनके पास है वे अधिकांशतः उच्च जाति के हिन्दू समुदाय से आते हैं, इसलिए अल्पसंख्यकों और निचली जातियों के लोगों के लिए स्वतन्त्रता बेमानी ही है। यही बात अल्पसंख्यकों के संस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी प्रावधानों के विषय में लागू होती है। संविधान में मौजूद इन प्रावधानों का लाभ अल्पसंख्यकों के एक बेहद छोटे से हिस्से तक ही पहुँच पाता है जो पहले से ही सुविधासम्पन्न होते हैं और जो इन विशेषाधिकारों की मलाई काटकर मौजूदा व्यवस्था के सबसे बड़े पैरोकार बन जाते हैं। अल्पसंख्यकों की अधिकांश आबादी मेहनतकश वर्ग से आती है और आर्थिक दृष्टि से पिछड़ने की वजह से शिक्षा और संस्कृति के मामले में भी पिछड़ेपन का शिकार होती है। अल्पसंख्यकों की इस बहुसंख्यक मेहनतकश आबादी के शैक्षिक और सांस्कृतिक पिछड़ेपन के बारे में भारतीय संविधान मौन है।

संवैधानिक उपचारों का अधिकार

संविधान का अनुच्छेद 32 में नागरिकों को कई क़िस्म के रिटों के रूप में संवैधाानिक उपचारों का प्रावधान उल्लिखित है। ये रिट हैं – बन्दी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार पृच्छा और उत्प्रेरण। कोई भी व्यक्ति संविधान के भाग तीन में उल्लिखित किसी भी मूलभूत अधिकार के किसी व्यक्ति अथवा राज्य द्वारा हनन की सूरत में उपरोक्त रिटों के माध्यम से सीधे उच्चतम न्यायालय तक गुहार लगा सकता है।

मूलभूत अधिकारों की प्रस्तावना सम्बन्धी अंक में हम यह चर्चा कर चुके हैं कि उच्चतम न्यायालय अधिकांश नागरिकों की पहुँच से न सिर्फ़ भौगोलिक रूप से दूर है बल्कि बेहिसाब मँहगी और बेहद जटिल न्यायिक प्रक्रिया की वजह से भी संवैधानिक उपचारों का अधिकार महज़ औपचारिक अधिकार रह जाता है। उच्चतम न्यायालय में नामी-गिरामी वकीलों की महज़ एक सुनवाई की फीस लाखों में होती है। ऐसे में ज़ाहिर है कि न्याय भी पैसे की ताक़त से ख़रीदा जानेवाला माल बन गया है और इसमें आश्चर्य की बात नहीं है कि अमूमन उच्चतम न्यायालय के फ़ैसले मज़दूर विरोधी और धनिकों और मालिकों के पक्ष में होते हैं। आम आदमी अव्वलन तो उच्चतम न्यायालय तक जाने की सोचता भी नहीं और अगर वो हिम्मत जुटाकर वहाँ जाता भी है तो यदि उसके अधिकारों का हनन करने वाला ताकतवर और धनिक है तो अधिकांश मामलों में पूँजी की ताक़त के आगे न्याय की उसकी गुहार दब जाती है।

इस प्रकार न्याय की प्रक्रिया में पूँजी की दख़ल होने की वजह से संवैधानिक उपचार का अधिकार भी महज़ काग़ज़ी अधिकार रह जाता है। हक़ीक़त में यह आम जनता की पहुँच से बाहर है। चूँकि आम जनता संवैधानिक उपचार के अधिकार को ही अपने हित में लागू करने में सक्षम नहीं हो पाती इसलिए संविधान में मौजूद अन्य अतिसीमित मूलभूत अधिकार भी अन्तिम विश्लेषण में बेमानी ही साबित होते हैं।

(अगले अंक में संविधान के चौथे भाग में मौजूद राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्तों की असलियत)

पूँजीवाद का एक-एक दिन भारी है हमारे वजूद पर

(पेज 1 से आगे)

से जो मुनाफ़ा निचोड़ा जाता है उसका कोई भी हिस्सा नेता और नौकरशाह घूस, रिश्वत आदि के रूप में मारकर न ले जायें! केजरीवाल एण्ड पार्टी का मानना है कि इन नेताओं और नौकरशाहों को पहले से ही काफ़ी सुविधाएँ और वेतन मिल रहा है, इसलिए उनके भ्रष्टाचार पर रोक लगनी चाहिए! सही बात है! लेकिन फिर मुनाफ़े का वह पूरा हिस्सा क्या मज़दूरों तक पहुँचना चाहिए? क़तई नहीं! केजरीवाल जी इस पर नाराज़ हो जाते हैं! वह मुनाफ़ा बिना कटे-पिटे पूरी तरह से पूँजीपतियों की तिजोरी में पहुँच जाना चाहिए! यही तो केजरीवाल और उसकी वानर सेना का पूरा खेल है! वह कहीं भी किसी ऐसी व्यवस्था की बात नहीं करता जिसमें उत्पादन करने वाले वर्गों के सामूहिक मालिकाने में समूचे संसाधन हों! वह निजी सम्पत्ति की व्यवस्था का विरोध नहीं करता! वह तो अपने घोषणापत्र में ख़ुद ही कहता है कि आम आदमी पार्टी के नेता मध्यवर्गीय जीवन बितायेंगे! इसके आगे किसी भण्डाफोड़ की ज़रूरत ही नहीं है। बीते वर्ष ने कम-से-कम मज़दूरों के सामने साफ़ कर दिया है कि केजरीवाल एण्ड पार्टी की पूरी नौटंकी का मक़सद सिर्फ़ यही है कि सत्ता के विरुद्ध जनता के ग़ुस्से का इस्तेमाल करके इसमें कुछ ऐसे "सुधार" किये जायें जिसका पूरा फ़ायदा मालिक वर्ग को मिले और लूट के माल के बँटवारे में मालिक वर्ग का हिस्सा बढ़ जाये। टाटा और बजाज बिना वजह ही केजरीवाल का समर्थन नहीं कर रहे हैं। अण्णा हज़ारे का सितारा अभी गर्दिश में नज़र आ रहा है। लेकिन जैसे ही अरविन्द केजरीवाल नामक पत्ता पिट जायेगा वैसे ही अण्णा हज़ारे पूँजीवाद के लिए फिर से प्रासंगिक हो जायेंगे। इसीलिए उनके लिए सोचने वाले घाघों ने (क्योंकि महासन्त अण्णा तो ज़्यादा समय 'वन्दे मातरम' और 'भारत माता की जय' सोचने और बोलने में ही ख़र्च कर देते हैं!) बड़े सुविचारित तरीक़े से अण्णा हज़ारे से कुछ ऐसे बयान दिलवा दिये जो उन्हें अरविन्द केजरीवाल और उनकी मज़ाकिया पार्टी से अलग करते हों।

पूँजीवाद के ख़िलाफ़ नफ़रत के ही चलते दुनिया के अन्य हिस्सों में भी 2011 से ही जनता सड़कों पर उतरी थी। लेकिन वास्तव में कोई विकल्प न होने, यहाँ तक कि किसी भी विकल्प के प्रति एलर्जी का एक माहौल सृजित होने के कारण, कोई भी परिवर्तन नहीं हो सका। जिन देशों में परिवर्तन हुआ भी, या जिन देशों में ऐसी स्थिति निर्मित हो रही है, वहाँ भी सत्ता परिवर्तन हुए हैं, व्यवस्था परिवर्तन नहीं। मिसाल के तौर पर, मिस्र और ट्यूनीशिया में जनविरोधी तानाशाहों की सत्ता को स्वत:स्फूर्त विद्रोहों ने उखाड़कर फेंक दिया। लेकिन मज़दूर वर्ग की किसी भी क्रान्तिकारी पार्टी और किसी व्यावहारिक विकल्प की ग़ैर-मौजूदगी में एक ख़ालीपन पैदा हुआ जिसे ट्यूनीशिया में उदार पूँजीवादी सरकार ने भरा (जो कि उतनी ही मज़दूर-विरोधी है, जितनी कि उसके पहले कि बेन आबिदीन अली की सरकार थी), और मिस्र में धार्मिक कट्टरपन्थियों ने भरा। इससे जनता को कुछ भी हासिल नहीं हुआ। मिस्र के आम मेहनतकश अब इस असलियत को समझ भी रहे हैं और फिर से सड़कों पर उतर रहे हैं। सीरिया में भी जनविद्रोह जारी है, लेकिन अभी से उसका नेतृत्व काफी हद तक रूसी और अमेरिकी साम्राज्यवादियों के हाथों में खेल रहा है और अगर अल असद की तानाशाही को उखाड़ फेंकने में यह विद्रोह सफल हो भी जाये तो उसकी जगह कोई बेहतर शासन और व्यवस्था नहीं आयेगी। अमेरिका और यूरोप में जो 'क़ब्ज़ा करो' (आक्युपाई) आन्दोलन शुरू हुए थे, वे भी अब शान्त हो चुके हैं। पूँजीवाद की नग्न और बेशरम लूट के ख़िलाफ़ बेइन्तहा नफ़रत और ग़ुस्से के कारण जो तमाम छात्र, युवा और मज़दूर सड़कों पर उतरे थे, वे अपने घर वापस लौट चुके हैं। इसका कारण भी यही था कि यह पूरा प्रतिरोध आन्दोलन असंगठित और स्वत:स्फूर्ततावादी था। इस संघर्ष में तमाम तथाकथित वामपन्थी और नववामपन्थी यह विचार फैला रहे थे कि कोई क्रान्तिकारी पार्टी और कोई एक विचारधारा नहीं होनी चाहिए। निम्न पूँजीपति वर्ग में तो पहले से ही अराजकतावाद की प्रवृत्ति होती है, जो किसी भी क़िस्म के संगठन का विरोध करती है; मज़दूर वर्ग का भी एक हिस्सा इस अराजकतावाद की चपेट में आ गया था। लेकिन अब वे भी इस बात को समझ गये हैं कि अगर वे संगठित नहीं होंगे और उनके पास कोई पार्टी और कोई व्यावहारिक विकल्प नहीं होगा, तो वे वाल स्ट्रीट पर अनन्त काल तक क़ब्ज़ा करके नहीं बैठ सकते। लुटेरी सत्ता और व्यवस्था का ध्वंस तभी हो सकता है, जब आपके पास एक नयी न्यायप्रिय व्यवस्था का सपना, उसे लागू करने की विचारधारा और सपना मौजूद हो। इस वर्ष ने निर्णायक तौर पर यह दिखला दिया है कि बिना क्रान्तिकारी विचारधारा, बिना क्रान्तिकारी संगठन और बिना क्रान्तिकारी आन्दोलन के, कोई भी क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं हो सकता है। महज़ सत्ता-परिवर्तन हो सकते हैं, शासक वर्ग के एक निकाय की जगह कोई दूसरा निकाय जनता के ऊपर हुकूमत चलाने का काम हाथ में ले सकता है। इससे मज़दूरों, ग़रीब किसानों, आम छात्रों-नौजवानों, स्त्रियों और दलितों को कुछ भी हासिल होने वाला नहीं है। हमें लगता है कि यह इस वर्ष की सबसे ज़रूरी सीख थी, जिसे हर मज़दूर को अपने दिमाग़ में बिठा लेना चाहिए।

सही क्रान्तिकारी विचारधारा और एक विवेकवान और सूझ-बूझ वाले क्रान्तिकारी नेतृत्व की ग़ैर-मौजूदगी में ये संघर्ष इसी तरह से अन्धी गली में समाप्त होने के लिए अभिशप्त थे। लेकिन इन जनान्दोलनों की असफलता का अर्थ यह नहीं है कि पूँजीवादी विश्व व्यवस्था की सेहत बहुत अच्छी है। सच तो यह है कि 2012 में पूँजीवाद का वैश्विक संकट और गहरा गया है। अर्थव्यवस्था के 2012 में उबरने के जो दावे किये जा रहे थे, वे सभी खोखले साबित हो चुके हैं। 2007 से 2010 तक अमेरिकी अर्थव्यवस्था एक भयंकर मन्दी का केन्द्र बनी हुई थी, और वहाँ से उठने वाली मन्दी की लहरें पूरी दुनिया की अर्थव्यवस्थाओं को हिचकोले दे रही थीं। लेकिन 2010 से आर्थिक मन्दी का केन्द्र खिसक कर यूरोप में आ गया था। यूनान, पुर्तगाल, स्पेन और इटली जैसे देशों के सार्वभौम ऋण संकट ने हाहाकार मचा रखा है। नवउदारवाद और भूमण्डलीकरण की नीतियों ने इन देशों की अर्थव्यवस्थाओं को इस मुकाम पर पहुँचा दिया है कि उनकी सरकारों के पास अपने कर्मचारियों को वेतन देने तक के पैसे नहीं बचे हैं। इस संकट से निपटने के लिए उन्हें पहले से कर्ज़ से लदे होने के बावजूद और कर्ज़ लेने पड़ रहे हैं और उनसे धनी पूँजीवादी देश जैसे जर्मनी, इंग्लैण्ड और अमेरिका उन पर यह दबाव बना रहे हैं कि वे नवउदारवादी नीतियों को जारी रखें, ताकि विशालकाय बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की लूट जारी रह सके और इन अपेक्षाकृत पिछड़े पूँजीवादी देशों की जनता उनके हाथों लुटती और बरबाद होती रहे। लेकिन इन देशों में जनता इन नीतियों के ख़िलाफ़ सड़कों पर है, जिसके कारण सरकारें नवउदारवादी भूमण्डलीकरण की नीतियों को लागू नहीं कर पा रही हैं। इसके कारण एक राजनीतिक संकट पैदा हो गया है। यह राजनीतिक संकट आर्थिक संकट की ही राजनीतिक अभिव्यक्ति है। अब आर्थिक संकट का केन्द्र यूरोप से भी स्थानान्तरित होते हुए धीरे-धीरे एशियाई देशों की तरफ़ बढ़ रहा है। 2012 में आये आँकड़ों के मुताबिक़ उन देशों की भी विकास दर अब घट रही है जिन्हें अभी साल भर पहले तक ही "उभरती हुई अर्थव्यवस्थाएँ" कहा जा रहा था, यानी भारत, चीन, दक्षिण अफ़्रीका, ब्राज़ील आदि। इन देशों में पिछले एक-डेढ़ वर्ष से जो महँगाई का आलम है, वह इसी खिसकती मन्दी का परिणाम है। और इसी के कारण इन देशों में पिछले दो वर्षों में बेरोज़गारी और भुखमरी भी बढ़ी है। ऐसे में इन देशों की सरकारें हक़ीक़त में तब्दीली लाने की बजाय, सारा ज़ोर आँकड़ों में तब्दीली करने में लगा रही हैं। मिसाल के तौर पर, भारत में ही सरकार और उसकी एजेंसियाँ वास्तव में ग़रीबी को ख़त्म करने के लिए कुछ करने की बजाय आँकड़ों में हेर-फेर करके, ग़रीबी की नयी परिभाषाएँ रचकर और सीधे-सीधे धोखे-फ़रेब करके ग़रीबी को कम दिखलाने की कोशिश कर रही हैं। लेकिन सच्चाइयों से आँकड़े बनते हैं, आँकड़ों से सच्चाई नहीं! नवउदारवादी रास्ते को पूँजीवाद के रहते कोई सरकार नहीं छोड़ सकती और अगर ये नीतियाँ जारी रहती हैं, तो हम यक़ीन के साथ कह सकते हैं कि 2013 में हालात और भी ज़्यादा बिगड़ने वाले हैं। वैसे भी आम ग़रीबों की थालियों से एक-एक करके दाल और सब्ज़ी तो ग़ायब हो ही चुके हैं; 2013 में यही उम्मीद की जा सकती है कि स्थितियाँ और भी ज़्यादा बिगड़ेंगी। इस वर्ष हम और अच्छी तरह से समझ सकेंगे कि पूँजीवाद-साम्राज्यवाद का एक-एक दिन हमारे वजूद पर भारी है और इसे उखाड़ कर फेंकना और मज़दूर राज्य और समाजवाद की स्थापना हमारे अस्तित्व का प्रश्न है।

2012 में पूँजीवाद का संकट गहराने के साथ ही बेरोज़गार घूम रहे संशोधनवादी एकदम से व्यस्त हो गये हैं! पूँजीवादी व्यवस्था के टुकड़ों पर पलने वाले संसदीय वामपन्थी भारत में ही नहीं बल्कि दुनिया के अन्य देशों में भी अचानक प्रासंगिक हो गये हैं। मन्दी के फूट पड़ने के पहले माकपा-भाकपा वाले काफ़ी हद तक ख़ाली थे और बेरोज़गार घूम रहे थे। सरकार और केन्द्रीय बुर्जुआ पार्टियाँ उन पर ज़्यादा ध्यान भी नहीं दे रही थीं। गली का खुजली वाला कुत्ता भी येचुरी, करात जैसों को नहीं पूछ रहा था! लेकिन जैसे ही मन्दी शुरू हुई लाल मिर्च खाकर संसद में "विरोध" की रट लगाने वाले तोते मसरूफ़ हो गये हैं। सत्ताधारी पूँजीवादी पार्टियाँ भी इनकी ज़रूरत को समझती हैं और हर मन्दी के दौर में इन्हें तरजीह और कुछ जगह देने लगती हैं। इसका एक स्पष्ट कारण है। जब भी पूँजीपति वर्ग मन्दी को झेलता है तो वह उसका बोझ छँटनी-तालाबन्दी करके, मज़दूरी को सापेक्षिक तौर पर कम करके, काम के घण्टे बढ़ाकर, और हर सम्भव तरीक़े से शोषण को बढ़ाकर मज़दूरों पर डालता। आज जो मन्दी जारी है वह 80 वर्ष में पूँजीवादी दुनिया की सबसे भयंकर मन्दी है। इस बार भी दुनिया भर का पूँजीपति वर्ग अपने मुनाफ़े की हवस के कारण पैदा हुई आर्थिक मन्दी का बोझ मज़दूरों पर बेरोज़गारी, छँटनी और तालाबन्दी के रूप में डाल रहा है। लेकिन मज़दूर वर्ग भी चुपचाप यह सबकुछ झेलने को तैयार नहीं है। पूरी दुनिया में मन्दी के कारण मज़दूरों के बीच बेरोज़गारी बढ़ी है, खाने-पीने की वस्तुएँ महँगी हुई हैं, रिहायश महँगी हुई है और दवा-इलाज़ और शिक्षा भी और ज़्यादा महँगे हुए हैं। नतीजतन, मज़दूरों के लिए जीवन अकथनीय रूप से मुश्क़िल हो गया है। वे न तो अपने बच्चों को ढंग का खाना दे सकते हैं, न कपड़े, न रिहायश और न ही शिक्षा और चिकित्सा। मन्दी के दौरान मालिकों के पूरे वर्ग और उसकी सरकार ने मज़दूरों को भुखमरी की कगार पर धकेल दिया है। जवाब में मज़दूर वर्ग के सब्र का प्याला भी छलक रहा है। भारत में ही यनम, तिरुपुर, चेन्नई से लेकर दिल्ली, गुड़गाँव, मानेसर, फरीदाबाद, नोएडा, गाज़ियाबाद, गोरखपुर, लुधियाना, कोलकाता तक मज़दूर पूँजीवाद के इन तोहफ़ों के ख़िलाफ़ सड़कों पर हैं। मारुति सुज़ुकी के मज़दूरों का आन्दोलन ऐसे ही मज़दूर उभारों में से एक है। मज़दूर पूरे देश और समूची दुनिया में सड़कों पर उतर रहे हैं। ऐसे में ही पूँजीवाद को अपनी दूसरी सुरक्षा पंक्ति, यानी संशोधनवादियों की सबसे ज़्यादा ज़रूरत होती है। मज़दूर कहीं किसी क्रान्तिकारी दिशा में न बढ़ जायें, वे किसी क्रान्तिकारी विकल्प के बारे में न सोचने लग जायें, इसके लिए ज़रूरी होता है कि उनके बीच ऐसे कुछ ग़द्दार छोड़ दिये जायें जो अपने आपको लाल झण्डे वाला बताकर अन्दरख़ाने पूँजीपतियों की सेवा में संलग्न रहें। यही काम भारत में माकपा, भाकपा और भाकपा (माले) जैसी संसदीय वामपन्थी पार्टियाँ और सीटू, एटक और ऐक्टू जैसी उनकी ग़द्दार यूनियनें कर रही हैं। संशोधनवादी पार्टियों की यूनियनों और पूँजीवादी पार्टियों की यूनियनों में अब कोई फ़र्क़ ही नहीं रह गया है। ग्रेज़ियानो, एलाइड निप्पन और मारुति सुज़ुकी तक के संघर्षों में इन संशोधनवादी ट्रेड यूनियनों की ग़द्दारी मज़दूरों के सामने है। लेकिन कोई विकल्प न होने की स्थिति में मज़दूरों के सामने उनके पीछे-पीछे चलने के अलावा कोई रास्ता नहीं बचता। इस मजबूरी का ये केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें पूरा लाभ उठाती हैं और अपनी धन्धेबाज़ी करती हैं। ट्रेड यूनियनों के अलावा इन संशोधनवादी और संसदीय वामपन्थी पार्टियों ने अपने छात्र-युवा मोर्चे और प्रकाशन गृहों के काम को भी पिछले 2-3 वर्षों में दुरुस्त किया है। ज़ाहिर है, ये ग़द्दार समझ रहे हैं कि मन्दी और जनान्दोलनों की मार से संकट झेल रहे पूँजीवाद को उनकी सेवाओं की ज़रूरत पड़ने वाली है। 2012 का एक सबक़ यह भी था कि मज़दूर इन नक़ली वामपन्थी पार्टियों की सच्चाई को समझें और इनके चेहरे पर पड़े मुखौटे और नक़ाबों को नोच कर फेंक दें! ये कांग्रेस, भाजपा, सपा और बसपा से भी बड़े शत्रु हैं, क्योंकि ये आस्तीन के साँप हैं।

त्रासद बात यह है कि 2012 में भी क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों का बड़ा हिस्सा लकीर की फकीरी में ही लगा रहा। निश्चित तौर पर संसदीय वाम आज जनता और मज़दूरों के सामने काफ़ी हद तक नंगा हो चुका है और उसके ऊपर से भरोसा भी उठा चुका है। लेकिन दूसरी तरफ़ क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट धारा से भी कोई विकल्प उभर कर सामने नहीं आ रहा है। क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों का एक बड़ा हिस्सा आज भी इस भ्रामक उम्मीद में बैठा हुआ है कि भारत में चीन की 1949 की नवजनवादी क्रान्ति जैसी कोई क्रान्ति हो जायेगी; वह अभी तक इस उम्मीद में बैठा हुआ है कि एक दिन वह गाँवों से शहरों को घेरकर पूरे देश पर मज़दूरों-किसानों का राज स्थापित करने में सफल हो जायेंगे! "वामपन्थी" दुस्साहसवादी लाइन को लागू करते हुए ये लोग देश के उन हिस्सों में मुक्त क्षेत्र स्थापित करने में लगे हुए हैं, जहाँ पूँजी की पकड़ सबसे कमज़ोर है और जहाँ भारतीय

(पेज 13 पर जारी)

पूँजीवाद का एक-एक दिन भारी है हमारे वजूद पर

(पेज 12 से आगे)

पूँजीवाद अभी आदिम पूँजी संचय की मंज़िल में ही है। यानी, जहाँ भारत के कारपोरेट घराने अभी पहुँचे हैं और वहाँ की अकूत प्राकृतिक सम्पदा को लूटने के लिए वहाँ के आदिवासियों और ग़रीब किसानों को उनकी जगह-ज़मीन से बेरहमी से बेदख़ल कर रहे हैं। इस आदिवासी आबादी का भारतीय पूँजीवादी सत्ता के विरुद्ध प्रतिरोध-युद्ध एक जीवन-मरण की लड़ाई है। इस लड़ाई को लड़ने का सलीक़ा और तरीक़ा माओवादी उन्हें बता रहे हैं। लेकिन यह मान बैठना एक भारी भूल होगी कि यह आबादी उनके बिना लड़ती नहीं या कि यह आबादी आज विचारधारात्मक और राजनीतिक तौर पर प्रेरित होकर लड़ रही है। निश्चित तौर पर, यह पहलू उनका गौण पहलू है। मूल कारण है अस्तित्व की लड़ाई। एक बात स्पष्ट है। देश के 40 करोड़ सर्वहाराओं और क़रीब 30 करोड़ अर्द्धसर्वहाराओं को छोड़कर महज़ आदिवासी इलाक़ों, बीहड़ों और निर्जन क्षेत्रों में अगर कोई मुक्त क्षेत्र बनाकर बैठा भी रहे तो उससे भारतीय क्रान्ति की ओर एक क़दम भी नहीं बढ़ाया जा सकता है। आदिवासी आबादी के शोषण और दमन को ख़त्म करने की लड़ाई भी तभी आगे बढ़ सकती है, जब देश में कोई ऐसी क्रान्तिकारी शक्ति निर्मित हो जो इस देश की बहुसंख्यक सर्वहारा और अर्द्धसर्वहारा आबादी को अपने बैनर तले संगठित करके नयी समाजवादी क्रान्ति की ओर आगे बढ़े। लेकिन 1963 की चीनी पार्टी द्वारा प्रस्तुत आम कार्यदिशा को पैर की बेड़ियाँ बनाकर बैठे कठमुल्लावादी कम्युनिस्ट ये ज़िद पाले बैठे हैं कि जब करेंगे तो नवजनवादी क्रान्ति ही करेंगे, वरना नहीं करेंगे। क्रान्ति का मसला विज्ञान का मसला होता है और देश की ठोस परिस्थितियों का ठोस विश्लेषण करके ही मार्क्सवादी क्रान्ति के सही-सटीक कार्यक्रम तक पहुँच सकते हैं। इस मामले में 'मूछें हों तो नत्थूलाल जैसी हों वरना न हों' जैसी मूर्खतापूर्ण ज़िद काम नहीं आती! 2012 का एक सबक़ यह भी था कि लकीर की फकीरी छोड़कर क्रान्तिकारी ताक़तें रचनात्मक तरीक़े से क्रान्ति के विज्ञान को अपने देश-समाज की परिस्थितियों पर लागू करें और ज़रूरी नतीजे निकालें और सही कार्यक्रम और योजना तैयार करें।

2012 एक ऐसा वर्ष था जिसमें विकल्पहीनताओं के दो ध्रुव दुनिया के सामने थे। एक ओर यह आज एक सिद्ध तथ्य बन चुका है कि पूँजीवाद अजर-अमर नहीं है और वह एक ऐसे अन्तकारी संकट के भँवर में फँसा हुआ है जिससे निकलने का रास्ता एक ही है-ताबूत! पूँजीवाद-साम्राज्यवाद मानवता को अब कुछ नहीं दे सकते हैं, सिवाय तबाही और बरबादी के! उनका समय इस धरती पर पूरा होने के क़रीब है। लेकिन कोई भी चीज़ अपने आप ख़त्म नहीं होती। जब तक कि उसे ख़त्म करने वाली ताक़त मौजूद न हो। आज दूसरी विकल्पहीनता यह है कि पूँजीवादी व्यवस्था के भीतर से हमेशा से ज़्यादा कमज़ोर और खोखला होने के बावजूद कोई ताक़त उसका एक वैज्ञानिक और व्यावहारिक विकल्प नहीं पेश कर पा रही है। दूसरे शब्दों में कहें तो मज़दूर वर्ग का हिरावल किसी क्रान्तिकारी पार्टी के रूप में आज संगठित नहीं है। ऐसी कोई हिरावल पार्टी मौजूद नहीं है जो मार्क्सवाद के विज्ञान को सही तरीक़े से लागू करते हुए भारत की क्रान्ति का एक सही कार्यक्रम पेश करे! इस दोहरी विकल्पहीनता के बावजूद जनता चुप नहीं बैठी है। वह स्वत:स्फूर्त ढंग से सड़कों पर उतर रही है। लेकिन इतिहास इस बात का गवाह है कि किसी भी क्रान्ति के लिए सिर्फ़ आन्दोलन का होना ज़रूरी नहीं है, बल्कि एक सही क्रान्तिकारी सोच और क्रान्तिकारी विचारधारा का होना भी ज़रूरी है।

एक क्रान्तिकारी विकल्प की अनुपस्थिति में पूँजीवादी व्यवस्था और समाज अपने रुग्णतम उत्पादों को पैदा कर रहा है। हाल में स्त्रियों के ख़िलाफ़ हमारे देश में दिल्ली की सड़कों से लेकर नोएडा, जीन्द, कैथल, महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल तक के गाँवों-कस्बों में जो बर्बर अपराध हुए हैं और अभी भी जारी हैं, वे वास्तव में यही दिखला रहे हैं कि हम एक रुग्ण, घिनौने और बर्बर समाज में जी रहे हैं, जिसमें स्त्रियों को भोग की वस्तु या माल बना दिया गया है। मज़दूरों की श्रम शक्ति पूँजीवादी समाज में एक माल है, लेकिन स्त्रियों के पूरे वजूद को ही पूँजीवादी समाज में माल बना दिया गया है। वैसे तो सभी स्त्रियों को यौन हिंसा व अन्य अपराधों का सामना करना पड़ता है, लेकिन देश की मज़दूर स्त्रियों, दमित राष्ट्रीयताओं की स्त्रियों, आदिवासी और दलित स्त्रियों को बर्बरतम स्त्री-विरोधी अपराधों का सामना करना पड़ता है। दिल्ली में एक पैरामेडिकल की छात्रा के साथ हुए पाशविक सामूहिक बलात्कार के साथ स्त्रियों की सुरक्षा और सम्मान का मुद्दा केन्द्रीय बन गया है और यह अच्छा ही हुआ है। लेकिन इससे पहले भी ऐसी ही घटनाएँ देश के तमाम हिस्सों में घट रही थीं और विशेषकर आम ग़रीब मेहनतकश महिलाओं के साथ घट रही थीं। तब मीडिया इसे कोई मुद्दा नहीं बनाता था। सेना द्वारा कश्मीर में आसिया और उत्तर-पूर्व में मनोरमा के बलात्कार के मुद्दे कभी इस देश के मध्यवर्ग की अन्तरात्मा को नहीं झकझोरते। लेकिन हमारे लिए सोचने का सवाल है कि यह पूँजीवादी समाज अब बर्बरता और पाशविकता के किस स्तर तक गिर गया है, जहाँ हमारा पूरा वजूद एक भोग की वस्तु बन गया है, मानव माँस मण्डियों में बिक रहा है। यह बीता वर्ष यह दिखलाने के लिए भी था कि अब अगर हम अपनी गुलामी की ज़ंजीरों को तोड़कर फेंक देने के लिए, पूँजीवादी व्यवस्था और समाज को ज़मीन्दोज़ कर एक नयी न्यायपूर्ण, समानतापूर्ण और जनवादी समाज और व्यवस्था बनाने के लिए आगे नहीं आते, तो आने वाला समय बर्बरता का होगा! 2012 ने एक बार फिर बताया है कि मानवता के सामने केवल दो ही रास्ते हैं: **समाजवाद या बर्बरता!**

दिल्ली गैंगरेप की घटना के बाद स्त्री-विरोधी घटिया सोच का कोढ़ फूट पड़ा है!

राजनेताओं, बाबाओं-मुल्लों से लेकर पुलिस अफ़सरों तक की घिनौनी मानसिकता उजागर!

अन्धकार की ताक़तों के ख़िलाफ़ लड़ाई तेज़ करनी होगी!!!

16 दिसम्बर को एक 23 वर्षीय पैरामेडिकल छात्रा के साथ दिल्ली में पाशविक सामूहिक बलात्कार और 13 दिन तक मौत से लड़ने के बाद हमारी उस बहादुर साथी की शहादत के बाद अभी देश के तमाम इंसाफ़पसन्द और संवेदनशील युवा, स्त्रियाँ और नागरिक सड़कों पर ही हैं। लेकिन देश में रूढ़ियों, कूपमण्डूकता, अन्धविश्वास, साम्प्रदायिक कट्टरपंथ और कठमुल्लेपन के ठेकेदारों ने पूरी नंगई और बेशरमी के साथ अपनी घृणास्पद सोच को दुनिया के सामने रखना शुरू कर दिया है। और दुनिया को पीछे ले जाने के इनके कोरस में देश के तमाम पार्टियों के नेताओं-मन्त्रियों से लेकर नौकरशाह और पुलिस अफसर तक सुर मिला रहे हैं।

देश में "सांस्कृतिक राष्ट्रवाद" और धार्मिक उन्माद के ध्वजाधारी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक मोहन भागवत ने कहा है कि बलात्कार की बढ़ती घटनाओं का कारण यह है कि उस भारतीय परम्परा का पालन नहीं हो रहा है जिसके अनुसार स्त्रियों को सिर्फ़ गृहिणी होना चाहिए! उनके अनुसार बाहर निकलने और कमाने की ज़िम्मेदारी केवल मर्दों की होनी चाहिए। उन्होंने यह भी कहा कि

'शंकर्स वीकली' नामक पत्रिका के एक पुराने अंक में प्रसिद्ध कार्टूनिस्ट शंकर का एक कार्टून

पश्चिमी मूल्यों के प्रभाव के कारण स्त्री-विरोधी अपराध हो रहे हैं और इसीलिए वे 'भारत' में नहीं हो रहे हैं, 'इण्डिया' में हो रहे हैं! यह सारी बातें तथ्यत: झूठ हैं और घटिया स्त्री-विरोधी अतीतगामी सोच की एक मिसाल हैं। लेकिन मोहन भागवत की ऐसी सोच पर कोई ताज्जुब भी नहीं होता। हिटलर और मुसोलिनी के विचारों में यक़ीन रखने वालों से और उम्मीद भी क्या की जा सकती है? उनकी फासीवादी सोच भी यही थी कि स्त्रियाँ घर सम्भालने और बच्चा पैदा करने का यन्त्र हैं। ज़ाहिर है, जर्मन और इतालवी फासीवाद की जारज भारतीय औलादों से स्त्रियों के प्रति और किसी नज़रिये की उम्मीद नहीं की जा सकती। लेकिन एक सवाल यह भी है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ को अपना मार्गदर्शक संगठन बताने वाली भाजपा की सभी महिला नेता इस्तीफ़ा देकर घर क्यों नहीं बैठ जातीं? सबसे पहले सुषमा स्वराज, मीनाक्षी लेखी, निर्मला सीतारमण, उमा भारती, और स्मृति ईरानी जैसी भाजपाई स्त्री नेताओं को घर बैठकर अपने-अपने पतियों की सेवा करनी चाहिए और गृहिणी बन जाना चाहिए! वे बाहर काम क्यों कर रही हैं? ज़ाहिर है, आर.एस.एस. आम जनता की जुझारू और बहादुर औरतों को घर बिठाना चाहता है, शासक वर्ग की सेवा करने वाली औरतों को नहीं!

अब जब हिन्दू साम्प्रदायिक फासीवादियों ने अपने युगों पुराने, सड़े हुए, उबकाई ला देने वाले स्त्री-विरोधी विचारों की उल्टी शुरू कर दी है तो इस्लामिक कट्टरपंथी मुल्ले क्यों पीछे रहते? लिहाज़ा, जमात-ए-इस्लामी हिन्द के कठमुल्लों ने एलान किया कि स्त्री-विरोधी अपराधों को रोकने के लिए स्त्रियों और पुरुषों की बचपन से अलग पढ़ाई होनी चाहिए, यानी सहशिक्षा ख़त्म कर दी जाये! यह तालिबानी सोच भी भारत को 18वीं सदी में ले जाने वाली सोच है। वास्तव में तमाम स्त्री-विरोधी मूल्य-मान्यताओं और मनोविज्ञान के पीछे एक कारण हमारे समाज में बचपन से लड़के और लड़की के बीच पैदा किया गया पार्थक्य और अलगाव भी है, जिसके कारण दोनों एक दूसरे के लिए अबूझ और रहस्य बन जाते हैं। आगे चलकर यही ग्रन्थि कई मामलों में स्त्री-विरोधी अपराधों को भी जन्म देती है। लेकिन जमात-ए-इस्लामी हिन्द के कठमुल्ले पूरी दुनिया को अन्धकार के युग में ले जाने की कसम खाकर बैठे हैं

पूँजीवादी मीडिया की लगातार खुलती पोल-पट्टी

पूँजी की ताक़त पर टिका मीडिया जनपक्षधर हो ही नहीं सकता

मौजूदा व्यवस्था के हुक्मरान और उनके टुकड़ों पर पलने वाले पत्रकार और बुद्धिजीवी यह भरसक प्रयास करते हैं कि उनकी लूट-खसोट और काले कारनामों के बारे में जनता अनजान रहे और जनमानस में इस व्यवस्था से मोहभंग न हो। परन्तु इस पूँजीवादी व्यवस्था में बेहिसाब मुनाफ़ा पीट रहा पूँजीपति वर्ग अन्तरविरोधों से मुक्त नहीं होता। पूँजीपति वर्ग के अलग-अलग धड़ों में ज़्यादा से ज़्यादा मुनाफ़ा कमाने की होड़ लगी रहती है और इस होड़ में आगे निकलने के लिए वे न सिर्फ़ मज़दूरों के शोषण के नित नये तरीक़े इज़ाद करते हैं बल्कि अपने प्रतिद्वन्द्वी पूँजीपतियों का सफ़ाया करने की हद तक गुज़र जाते हैं। इसी अन्तरविरोध की वजह से जनता में अपनी अच्छी छवि प्रस्तुत करने की शासक वर्ग के तमाम कोशिशों के बावजूद आये दिन इस व्यवस्था में जारी लूट का खुलासा हो रहा है। इस व्यस्था की बुनियादी संस्थाओं यानी संसद, सरकार, न्यायपालिका, नौकरशाही, पुलिस, सेना आदि के घोर जनविरोधी चरित्र और उनमें व्याप्त भ्रष्टाचार तो काफ़ी पहले ही बेपर्द हो चुके हैं, समय बीतने के साथ ही साथ इसकी रक्षापंक्ति यानि मीडिया में जारी बेइन्तहा लूट का भी खुलासा होता जा रहा है। हाल ही में भारत के सबसे बड़े मीडिया घरानों में से एक ज़ी समूह के दो वरिष्ठतम सम्पादकों की फिरौती वसूलने के मामले में गिरफ़्तारी इसी कड़ी का एक हिस्सा है।

ज़ी न्यूज़ के सम्पादक सुधीर चौधरी और ज़ी बिज़नेस के सम्पादक समीर अहलूवालिया को हाल ही में दिल्ली पुलिस ने 100 करोड़ रुपये की फिरौती के मामले में गिरफ़्तार किया। ये सम्पादकद्वय उद्योगपति और कांग्रेस सांसद नवीन जिन्दल से डील कर रहे थे कि ज़ी समूह के दो टीवी चैनलों में कुख्यात कोयला घोटाले में जिन्दल समूह की संलिप्तता की ख़बर को नहीं दिखाया जाये और इसकी एवज़ में वे 100 करोड़ रुपये तक के विज्ञापन की माँग कर रहे थे। मज़े की बात यह है कि इस भारतीय मीडिया की स्वतन्त्रता के तमाम दावों को धता बताती इस ख़बर का खुलासा और किसी ने नहीं बल्कि स्वयं नवीन जिन्दल ने एक 'स्टिंग ऑपरेशन' के ज़रिये किया।

नवीन जिन्दल ने यह 'स्टिंग आपरेशन' करके कोयला घोटाले के सामने आने के बाद जिन्दल समूह पर पुती कालिख को पोछना चाहा। यह कालिख तो नहीं पुछी, परन्तु इस पूरे प्रकरण ने मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था और उसके भोंपू का काम करने वाली कॉरपोरेट मीडिया की काली सच्चाई को उघारकर रख दिया। कॉरपोरेट मीडिया अभी राडिया टेप काण्ड और पेड न्यूज़ जैसी परिघटनाओं को बड़ी मुश्क़िल से दबा पायी थी कि ज़ी न्यूज़ प्रकरण ने कॉरपोरेट मीडिया की चमक-दमक के पीछे की भद्दी सच्चाई एक बार फिर जनता के सामने उजागर कर दी है। राडिया टेप काण्ड में यह बात उभर कर आयी थी कि इस देश के तमाम नामी गिरामी पत्रकार, जिनमें से कइयों को तो पद्म श्री से भी नवाज़ा जा चुका है, किस प्रकार कॉरपोरेट घरानों और राजनीतिक दलों के बीच दलालों जैसा काम करते हैं। 'पेड न्यूज़' प्रकरण ने यह साफ़ ज़ाहिर कर दिया था कि मीडिया घराने अख़बारों में प्रकाशित और टीवी चैनलों पर पूँजीपतियों और नेताओं की अच्छी छवि दिखायी जाने वाली ख़बरों की एवज़ में कॉरपोरेट घरानों और चुनावी पार्टियों से मोटी रक़म वसूलते हैं। हाल में सम्पन्न गुजरात और हिमाचल प्रदेश के विधान सभा चुनावों में भी यह बात खुलकर सामने आयी कि 'पेड न्यूज़' की यह प्रक्रिया बदस्तूर जारी है। ज़ी न्यूज़ प्रकरण ने अब यह साफ़ कर दिया है कि मुनाफ़ा कमाने की अन्धी होड़ में कॉरपोरेट मीडिया फिरौती वसूलने की हद तक भी गिर सकती है।

ज़ी न्यूज़ प्रकरण के बाद टीवी और अख़बारों में इस देश के बड़े-बड़े पत्रकारों और बुद्धिजीवियों ने मीडिया के गिरते चरित्र पर आँसू बहाये और आश्चर्य व्यक्त किया कि लोकतन्त्र का चौथा खम्भा भला ऐसा घटिया काम कैसे कर सकता है। भारतीय प्रेस परिषद के अध्यक्ष जस्टिस काटजू ने भी इस प्रकरण पर हैरत जताते हुए मीडिया के विनियमन करने का अपना पसन्दीदा राग अलापा । परन्तु यदि ये बुद्धिजीवी और पत्रकार लोकतन्त्र की किताबी व्याख्या से आगे निकल कर यह देखने का साहस कर पाते कि वास्तव में भारतीय पूँजीवादी लोकतन्त्र और पूँजीवादी मीडिया का आधार पूँजी और मुनाफ़ा है तो शायद उन्हें मीडिया के नैतिक पतन पर इतना आश्चर्य न होता। क्या इस बात में अब भी कोई शक है कि मौजूदा व्यवस्था में मीडिया सूचनाओं का कारोबार करती है और इस कारोबार में ख़बरों को माल बनाकर बेहिसाब मुनाफ़ा कमाया जाता है? ऐसे में मीडिया से जनपक्षधरता की अपेक्षा करना ख़ामख़्याली है। पूँजी की ताक़त पर टिकी मीडिया पूँजी के हित में ही काम करेगी। पूँजीवादी मीडिया से आस लगाने की बजाय ज़रूरत इस बात की है कि जनता के अपने संसाधनों से चलने वाले मीडिया तन्त्र की बुनियाद पुख़्ता की जाये।

अन्धकार की ताक़तों के ख़िलाफ़ लड़ाई तेज़ करनी होगी!!!

और अपने हिन्दू साम्प्रदायिक प्रतिद्वन्द्वियों को इस मामले में पछाड़ देने के लिए पूरा दम लगा रहे हैं!

धार्मिक बाबा आसाराम बापू ने तो इन बेशरम और बेहूदे प्रतिक्रियावादियों को भी शर्म करने पर मजबूर कर दिया। उसने कहा कि 16 दिसम्बर को जिस लड़की के साथ सामूहिक बलात्कार की घटना घटी, वह इसके लिए खुद ज़िम्मेदार थी; क्योंकि उसने इन पाशविक अपराधियों के सामने घुटने टेककर, हाथ जोड़कर दया की भीख माँगने की बजाय लड़ना और मुकाबला करना पसन्द किया। ऐसे घृणास्पद विचारों की भर्त्सना के लिए हमारे पास कोई शब्द नहीं हैं। लेकिन हमें कोई ताज्जुब भी नहीं हैं! ऐसे तमाम धार्मिक बाबा और धर्म का व्यापार करने वाले ठेकेदार ही तो हैं जिन पर बलात्कार, हत्या, अपनी भक्तिनों के यौन-उत्पीड़न, आश्रमों में वेश्यालय चलवाने आदि जैसे आरोप हैं! इनसे भी क्या हम यह उम्मीद कर सकते हैं कि वे एक बहादुर, गरिमापूर्ण, और शक्तिशाली स्त्री का सम्मान करें?

जब पूरा देश अपनी एक बेटी के बलात्कार और हत्या के ख़िलाफ़ सड़कों पर उबल रहा था, उसी समय इस देश की संसदों-विधानसभाओं में बैठने वाले तथाकथित जनप्रतिनिधि क्या कह रहे थे? ममता बनर्जी ने कहा कि आज़ादी का अगर यह मतलब है कि आधी रात को लोग हाथों में हाथ डालकर घूमेंगे तो ऐसी घटनाएँ तो घटेंगी ही; तृणमूल कांग्रेस के ही एक अन्य नेता ने कहा कि स्त्रियाँ जब सीमा पार करेंगी तो उनके साथ बलात्कार ही होगा; मध्यप्रदेश के एक भाजपा नेता ने कहा कि महिलाओं को लक्ष्मण रेखा नहीं लाँघनी चाहिए; राजस्थान के एक कांग्रेस नेता ने कहा कि स्त्रियों के स्कर्ट पहनने पर रोक लगा दी जानी चाहिए; एक बसपा नेता ने लड़कियों के मोबाइल प्रयोग और जींस पहनने पर पाबन्दी लगाने की माँग की! यानी, रोज़-ब-रोज़ इस देश की सड़कों पर आम स्त्रियों के ख़िलाफ़ जो बर्बर अपराध और यौन हिंसा हो रही है उसके बाद स्त्रियों को ही ज़िम्मेदार ठहराकर उनके ही हक़ों पर हर किस्म की रोक लगाने की साज़िशें की जा रही हैं! हमारे देश की नेताशाही की भी पूरी सोच धार्मिक कट्टरपंथियों और रूढ़िवादियों से भिन्न नहीं है। और ये वे लोग हैं जिन पर खुद पोर्न फिल्म बनाने, बलात्कार करने, दहेज़ के लिए जलाकर मारने, छेड़खानी और यौन-उत्पीड़न करने के आरोप दर्ज़ हैं! संसद में 286 ऐसे सांसद हैं जिन पर स्त्री-विरोधी अपराधों के लिए मुकदमे चल रहे हैं! और ये अपराधी और बलात्कारी देश की मेहनती और गरिमापूर्ण औरतों को बता रहे हैं कि वे कैसे रहें और कैसे नहीं!

देश की पुलिस का हाल भी कुछ ऐसा ही है। जिस देश में बलात्कार के मामले पर प्राथमिकी दर्ज़ कराने गयी लड़की के साथ पुलिसवाले दुबारा सामूहिक बलात्कार करते हैं, वहाँ आप क्या उम्मीद कर सकते हैं? जहाँ गिरफ़्तार राजनीतिक महिला कार्यकर्ताओं को यौन यातना देने वाले पुलिसवाले को सरकार वीरता पुरस्कार से सम्मानित करती है, वहाँ हम क्या अपेक्षा कर सकते हैं? एक पत्रिका द्वारा किये गये स्टिंग ऑपरेशन में राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के आला पुलिस अधिकारियों ने कहा कि स्त्री-विरोधी अपराध इसलिए होते हैं क्योंकि औरतों ने सेक्स को धन्धा बना लिया है; क्योंकि औरतें आदमियों को उकसा देती हैं; क्योंकि लड़कियाँ लड़कों से दोस्ती करती हैं, वगैरह। इसी से पता चलता है कि देश की पुलिस की औरतों के प्रति सोच क्या है।

ज़ाहिर है कि हम इन स्त्री-विरोधी, रूढ़िवादी, प्रतिक्रिया-वादी, तानाशाहाना, और बर्बर ताक़तों से यह उम्मीद नहीं कर सकते कि वे स्त्री के अधिकारों का सम्मान करेंगी, स्त्रियों को समानता का हक़ देंगी, उनकी सुरक्षा के लिए इन्तज़ामात करेंगी, या उन्हें समाज में पुरुषों के समान मानेंगी! यही तो वे ताक़तें हैं जो स्त्री की गुलामी के लिए ज़िम्मेदार हैं, यही तो वे लोग हैं जो स्त्री-विरोधी अपराधों के लिए जवाबदेह हैं और अक्सर स्वयं उन्हें अंजाम देते हैं, यही तो वे लोग हैं जो स्त्रियों को पुरुषों की दासी समझते हैं और उन्हें पैर की जूती बनाकर रखना चाहते हैं! इनसे भला क्या उम्मीद की जा सकती है? कुछ भी नहीं! हम एक ही चीज़ कर सकते हैं: इस समाज के सभी विद्रोही, संवेदनशील और न्यायप्रिय युवा और युवतियाँ, मेहनतकश और आम मध्यवर्गीय नागरिक सदियों पुरानी रूढ़ियों, कूपमण्डूकताओं, पाखण्ड और ढकोसलेपंथ के इन अपराधी ठेकेदारों की बन्दिशों को उखाड़ कर फेंक दें, इन्हें तबाह कर दें, नेस्तनाबूद कर दें! ये हमारे देश और समाज को पीछे ले जाने वाले प्रतिक्रियावादी हैं, राष्ट्रवादी या देशभक्त नहीं! आगे अगर हम ऐसे धार्मिक कट्टरपंथियों, बाबाओं, स्त्री-विरोधियों की कोई भी बात या प्रवचन सुनते हैं, तो हममें और भेड़ों की रेवड़ों में कोई फ़र्क नहीं रह जायेगा! अगर हम इन अन्धकार की ताक़तों के ख़िलाफ़ उठ नहीं खड़े होते तो सोचना पड़ेगा कि हम ज़िन्दा भी रह गये हैं या नहीं!

चतुर्थ अरविन्द स्मृति संगोष्ठी

विषय: जाति प्रश्न और मार्क्सवाद

12-16 मार्च, 2013, चण्डीगढ़

आयोजन स्थल: सोहन सिंह भकना भवन, सेक्टर 29-डी, (ट्रिब्यून कॉलोनी के सामने), चण्डीगढ़

आलेख एवं बहस के केन्द्रीय बिन्दु:

- डा. अम्बेडकर की दार्शनिक अवस्थिति, इतिहासदृष्टि, उनके राजनीतिक एवं आर्थिक विचार, सामाजिक-सांस्कृतिक संरचना विषयक विचार और जाति-उन्मूलन की परियोजना - मार्क्सवादी समालोचना और उसका प्रतिपक्ष। मार्क्सवाद-विषयक अम्बेडकर के विचारों की समीक्षा।

- जाति प्रश्न की मार्क्सवादी समझ। जाति प्रश्न पर नवअम्बेडकरवादी, नवमार्क्सवादी अवस्थितियों, विभिन्न समाजशास्त्रीय स्कूलों तथा 'सबऑल्टर्न' एवं अस्मितावादी राजनीति सहित विभिन्न उत्तर-आधुनिक अवस्थितियों पर विचार-विमर्श।

- जाति प्रश्न पर मार्क्सवादी इतिहास लेखन और अम्बेडकरवादी इतिहास लेखन।

- जाति प्रश्न और भारत का कम्युनिस्ट आन्दोलन। इतिहास और वर्तमान। सिद्धान्त और व्यवहार। जाति उन्मूलन की कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी परियोजना।

- दलित साहित्य और आलोचना की सैद्धान्तिकी। दलित सौन्दर्यशास्त्र की दार्शनिक अन्तर्वस्तु।

पाँच दिनों की इस गम्भीर बहस में आप साग्रह आमन्त्रित हैं। आलेख भेजने और आने की सूचना देने के लिए आप नीचे दिए पते/फोन/ईमेल पर सम्पर्क कर सकते हैं:

अरविन्द स्मृति न्यास

69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006,
ईमेल: info@arvindtrust.org / arvindtrust@gmail.com
फोन: 9936650658, ईमेल: katyayani.lko@gmail.com,
फोन: 8853093555, ईमेल: satyamvarma@gmail.com
विषय के विस्तृत विवरण तथा अन्य ब्योरों के लिए हमारी वेबसाइट **http://arvindtrust.org** पर देखें।

विश्व सर्वहारा के महान नेता स्तालिन के जन्मदिवस (21 दिसम्बर,1878) के अवसर पर

कुछ महत्वपूर्ण और प्रासंगिक उद्धरण

सभी देशों के मज़दूर आन्दोलन का अनुभव ही अपने सामान्य रूपों में सिद्धान्त कहलाता है। क्रान्तिकारी व्यवहार से विलग हो जाने पर सिद्धान्त का आलोक न मिलने पर व्यवहार अँधेरे में ही टटोलता रह जाता है। किन्तु अगर सिद्धान्त का निर्माण क्रान्तिकारी आन्दोलन के साथ अविच्छिन्न सम्बन्ध रखते हुए किया गया हो तो वह मज़दूर आन्दोलन में एक प्रचण्ड शक्ति बन सकता है। क्योंकि सिद्धान्त और एकमात्र सिद्धान्त ही वह चीज़ है जो आन्दोलन की क्षमता के सम्बन्ध में हमारे अन्दर विश्वास भर सकता है और बदलती हुई परिस्थितियों के अनुकूल नीति अपनाने और चारों ओर की घटनाओं के अन्तर्निहित सम्बन्धों को समझने की हमें शक्ति दे सकता है। क्योंकि सिद्धान्त और एकमात्र सिद्धान्त ही वह चीज़ है जो व्यवहार का पथ आलोकित करके हमें यह परखने में समर्थ बनाता है कि विभिन्न वर्ग आज किस तरह और किस ओर अग्रसर हो रहे हैं और भविष्य में उनकी प्रगति किस मार्ग से होगी। लेनिन ने ही इस सर्वविदित उक्ति को बीसियों बार प्रकट किया था और दोहराया था कि "क्रान्तिकारी सिद्धान्त के बिना क्रान्तिकारी आन्दोलन असम्भव है।"

– स्तालिन, 'लेनिनवाद के मूल सिद्धान्त' पुस्तक से

स्वत:स्फूर्तता का "सिद्धान्त" वास्तव में अवसरवादिता का सिद्धान्त है; यह मज़दूर आन्दोलन की स्वत:स्फूर्तता (अपनेआप बढ़ने की क्षमता) की उपासना का सिद्धान्त है; यह एक ऐसा सिद्धान्त है जो मज़दूर वर्ग के अग्रदल द्वारा अर्थात मज़दूर वर्ग की पार्टी द्वारा आन्दोलन का नेतृत्व किये जाने की आवश्यकता को ही अस्वीकार करता है।

स्वत:स्फूर्तता की उपासना का सिद्धान्त मज़दूर आन्दोलन के क्रान्तिकारी स्वरूप का विरोधी है; यह मज़दूर आन्दोलन द्वारा पूँजीवाद के प्रधान स्तम्भों पर प्रहार करने की नीति का विरोधी है। यह सिद्धान्त इस नीति का समर्थक है कि मज़दूर आन्दोलन केवल "प्राप्त" माँगों को अर्थात पूँजीवाद द्वारा "स्वीकार किये जाने योग्य" माँगों को ही लेकर आगे बढ़े, अर्थात मज़दूर आन्दोलन "न्यूनतम विरोध का मार्ग" अपनाये। स्वत:स्फूर्तता का सिद्धान्त मज़दूर संघवाद (ट्रेड यूनियनिज़्म) की विचारधारा है।

स्वत:स्फूर्तता की उपासना का सिद्धान्त स्वत:स्फूर्त आन्दोलनों को राजनीतिक रूप से संगठित बनाने की नीति का विरोधी है। वह इस बात का विरोधी है कि पार्टी मज़दूर वर्ग की अगुआ बनकर उसके आगे-आगे चले, जनता को वर्ग चेतना के धरातल पर लाये और उसके आन्दोलन का नेतृत्व करे। यह इस विचार का समर्थक है कि मज़दूर वर्ग के वर्ग-सचेत लोग अपने आन्दोलन को अपनेआप बढ़ने दें, पार्टी उसके विकास में दख़ल न दे, बल्कि स्वयं उसकी पिछलग्गू बनकर चले। इस प्रकार स्वत:स्फूर्तता का सिद्धान्त मज़दूर आन्दोलन में वर्ग-सचेत लोगों की भूमिका को हीन ठहराने का सिद्धान्त है; यह पिछलग्गूपन (ख्वोस्तिज़्म-पुच्छवाद) की विचारधारा है और इस तरह हर प्रकार की अवसरवादिता का स्वाभाविक आधार है।

अतएव प्रश्न सुधारों, समझौतों और सन्धियों का नहीं है। प्रश्न उनके उपयोग का है।

एक सुधारवादी के लिए सुधार ही सबकुछ है; क्रान्तिकारी कार्य तो आकस्मिक चीज़ है; अधिक से अधिक वह गप-शप करके समय काट देने या जनता की आँखों में धूल झोंकने का एक साधन है। यही कारण है कि पूँजीवादी शासनकाल में सुधारवादी कार्यनीति के अन्तर्गत सुधार केवल उस शासन को दृढ़ करने और क्रान्ति को विघटित करने के अस्त्र बन जाते हैं।

इसके विपरीत एक क्रान्तिकारी के लिए मुख्य चीज़ सुधार नहीं है बल्कि क्रान्तिकारी कार्य है। सुधार उसके लिए क्रान्ति के उपपरिणाम हैं। यही कारण है कि पूँजीवादी शासनकाल में क्रान्तिकारी कार्यनीति के अन्तर्गत छोटे-मोटे सुधार भी उक्त शासन को विघटित करने और क्रान्ति को दृढ़ करने के अस्त्र बन जाते हैं और क्रान्तिकारी आन्दोलन को आगे बढ़ाने में सहायता देते हैं।

अतएव एक क्रान्तिकारी किसी सुधार को इसलिए स्वीकार करता है कि वह उसकी सहायता से क़ानूनी और ग़ैरक़ानूनी कामों को एक साथ चला सकता है और सुधारों की आड़ में पूँजीवादियों को उखाड़ फेंकने के लिए जनता की क्रान्तिकारी तैयारियों को आगे बढ़ाने का अपना ग़ैरक़ानूनी काम और भी मुस्तैदी से चला सकता है।

साम्राज्यवादी शासन की परिस्थितियों के अन्तर्गत क्रान्तिकारी ढंग से समझौतों और सुधारों के उपयोग करने का यही वास्तविक अर्थ है।

इसके विपरीत एक सुधारवादी सुधारों को इसलिए स्वीकार करता है कि उसके बहाने वह सभी ग़ैरक़ानूनी कामों को तिलांजलि देता है, जनता की क्रान्तिकारी तैयारियों के मार्ग में रोड़े अटकाता है और सुधारों के 'वरदान' की छाँह में बैठकर विश्राम करता है।

यह है सुधारवादी कार्यनीति का तात्पर्य।

– स्तालिन, 'लेनिनवाद के मूल सिद्धान्त' पुस्तक से

यह बिना जाने कि हमें किस दिशा में जाना चाहिए, बिना जाने कि हमारी गति का लक्ष्य क्या है, हम आगे नहीं बढ़ सकते। हम तब तक निर्माण नहीं कर सकते, जब तक कि हम बात की सम्भावना के प्रति निश्चित न हों कि समाजवादी आर्थिक व्यवस्था के निर्माण का आरम्भ करके उसे पूरा कर सकेंगे। पार्टी बिना स्पष्ट सम्भावना, बिना स्पष्ट लक्ष्य के निर्माण के काम का पथ-प्रदर्शन नहीं कर सकती। हम बर्नस्टाइन के विचारों के अनुसार नहीं कह सकते कि 'गति सब कुछ है, और लक्ष्य कुछ नहीं।' इसके विरुद्ध क्रान्तिकारियों की तरह हमें अपनी प्रगति, अपने व्यावहारिक काम को सर्वहारा-निर्माण के मौलिक वर्ग-लक्ष्य के अधीन करना होगा। नहीं तो, निस्सन्देह और अवश्य ही हम अवसरवाद के दलदल में जा गिरेंगे।

– स्तालिन, 1926, पार्टी की पन्द्रहवीं कांफ्रेंस में

कुछ यादगार छवियाँ

महान लेखक मक्सिम गोर्की के साथ स्तालिन

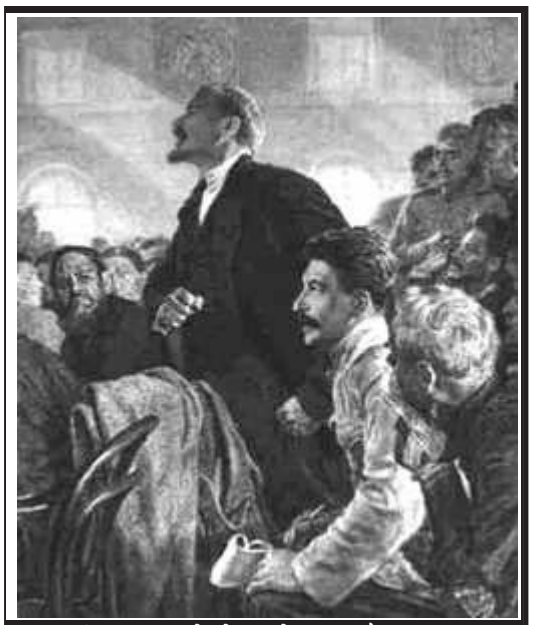

रूसी क्रान्ति के नेता लेनिन और स्तालिन

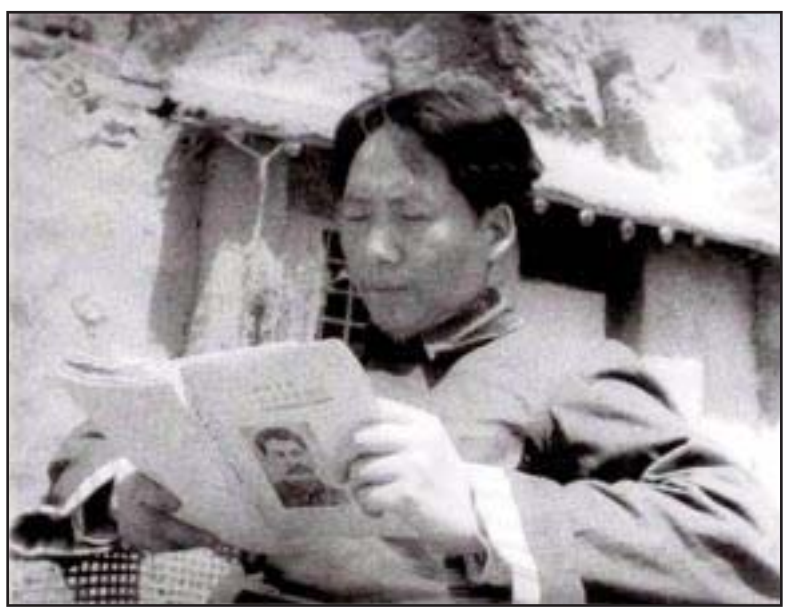

चीनी क्रान्ति के नेता माओ त्से-तुङ विश्व सर्वहारा के महान नेता स्तालिन की रचना पढ़ते हुए

RNI No. UPHIN/2010/36551
डाक पंजीयन: SSP/LW/NP-319/2011-2013
प्रेषित डाकघर: आर.एम.एस. चारबाग, लखनऊ
प्रेषित तिथि: दिनांक 20 प्रत्येक माह

नये साल पर मज़दूर साथियों के नाम 'बिगुल' का सन्देश

नये वर्ष पर नहीं है हमारे पास आपको देने के लिए
सुन्दर शब्दों में कोई भावविह्वल सन्देश
नये वर्ष पर हम सिर्फ आपकी आँखों के सामने
खड़ा करना चाहते हैं
कुछ जलते-चुभते प्रश्नचिह्न
उन सवालों को सोचने के लिए लाना चाहते हैं
आपके सामने
जिनकी ओर पीठ करके आप खड़े हैं।

देखिये! अपने चारों ओर बर्बरता का यह नग्न नृत्य
जड़ता की ताक़त से आपके सीने पर लदी हुई
एक जघन्य मानवद्रोही व्यवस्था
देखिये! अपने आस-पास की इस दुनिया को
जहाँ सामूहिक बलात्कार के शिकार
युवा स्वप्न पड़े हैं सरेआम सड़क पर लथपथ
क्या सचमुच हम बगल से होकर
चुपचाप गुज़र सकते हैं?

लांछित और कलंकित किया जा रहा है
हमारे अतीत के गौरवशाली संघर्षों और कुर्बानियों को
और सनक और बेवकूफ़ी बताया जा रहा है
मुक्ति के हमारे सपनों को
भविष्य की हमारी परियोजनाओं को
हवाई मंसूबा बताया जा रहा है
विद्वानों की सैद्धान्तिक उल्टियों से
सड़क-चौराहे बदबू कर रहे हैं
क्या ये सारी स्थितियाँ आपको सचमुच
काबिले-बर्दाश्त लगती हैं?

कृत्या राक्षसी की तरह हू-हू करती
पूँजी भाग रही है भूमण्डल पर चारों ओर
उठ रहे हैं और लड़ रहे हैं यहाँ-वहाँ
हमारे आपके साथी और भाई
और एक स्पष्ट दिशा और
अपने जैसों के साथ के अभाव में
टूट जा रही हैं और बिखर जा रही हैं उनकी लड़ाइयाँ
क्या सचमुच हम और आप
ऐसी लोहे की दीवारों के बीच
क़ैद हो गये हैं जहाँ कोई भी पुकार हमें सुनाई नहीं देती
नये साल पर हम सिर्फ आपसे यही पूछना चाहते हैं
हम आपको एक लम्बी, सुदूर, बीहड़ यात्रा पर
फिर से चल पड़ने के लिए
तैयार हो जाने का न्यौता दे रहे हैं।

हम आपसे फिर उठ खड़े होने के लिए कह रहे हैं
यह दुनिया यूँ ही रेंगती हुई ख़त्म नहीं होने वाली है
और पूँजी को दफ़्न करने का इतिहास का जो हुक़्म है
उसकी तामील आप ही को करनी है
चाहे आप जितनी भी देर करें
आप अपने इस ऐतिहासिक दायित्व से
मुँह नहीं चुरा सकते।

नये साल पर कहने के लिए हमारे पास
बस यही कुछ असुविधाजनक और चिन्ता
और चुनौतियों से भरी हुई बातें हैं
अगर आप सुन पायें तो इन पर सोचियेगा ज़रूर!

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधीपुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : सुखविन्दर, अभिनव ● सम्पादकीय पता : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006